दुर्गेशनन्दिनी

द्वितीय भाग।

बङ्ग भाषा के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक बाबू
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत बङ्गला
दुर्गेशनन्दिनी का भाषा अनुवाद
बाबू गदाधरसिंह कृत।

बाबू माधोप्रसाद
धर्मकूप, बनारस सिटी ने
काशी नागरी प्रचारिणी सभा से अधिकार
लेकर छपवाया और प्रकाश किया।

बी० एल्० पावगी द्वारा हितचिन्तक प्रेस,
रामघाट, बनारस सिटी में मुद्रित।

चौथीवार १०००) १९१८

कुछ बहुत ही उपयोगी पुस्तकें

महाराज श्रीकृष्णचन्द्र का जीवन चरित्र।

इस पुस्तक को पंजाब के लीडर लाला लाजपत राय की लिखी उर्दू पुस्तक से हिन्दी में बा० केशव प्रसाद सिंह ने अनुवाद किया है। यह पुस्तक हिन्दी में नये ढङ्ग की है। इस में ग्रन्थकार ने शास्त्रों के प्रमाणों और युक्तियों से इसबात को सिद्ध कर दिया है कि श्रीकृष्णजी कैसे राजनैतिक और नीति कुशल सचरित्र थे। इस पुस्तक में श्रीकृष्णचन्द्र के जन्म से अंतपर्य्यन्त का पूरा पूरा हाल लिखा गया है। पुस्तक हिन्दी पढ़े लिखे लोगो को अवश्य मंगानी चाहिये मूल्य ॥)

धर्म और विज्ञान।

यह पुस्तक हिन्दी के प्रेमी राजासाहब भिङ्गा की अनुमती और सहायता से प्रकाशित हुई है। इसको 'लक्ष्मी' के सम्पादक लाला भगवानदीनजी ने विलायत के मशहूर लेखक मिस्टर ड्रेपर की लिखी एक अंग्रजी पुस्तक "Connflict between religion and science" का अनुवाद किया है। रायल आठपेजी २८७ पन्ने की सुन्दर पुस्तक है। यह पुस्तक नई रोशनी और विज्ञान का प्रचार करती है और इसने विलायत के अंधविश्वास को दूर करने में बड़ी मदद दी है। मूल्य २)

प्राचीन भारत वर्ष की सभ्यता का इतिहास।

चार भाग में छपकर समाप्त होगया।

(मि० रमेशचन्द्रदत्त की लिखी हुई पुस्तक का अनुवाद)

यह पुस्तक काशी "इतिहास प्रकाशक समिति" की ओर से छपी है। हिन्दी भाषा में अपने ढंग का नया इतिहास है और भाषा में इतिहास के अभाव को दूर कर रहा है। इस पुस्तक के अधिक बिकने से नये २ इतिहास छपेंगे इसे अवश्य मंगाइये।

मूल्य-भाग पहिला १) भाग दूसरा १) ३ रा १) ४ था १) चारों भाग का मूल्य ४)

दुर्गेशनन्दिनी ।

द्वितीयखण्ड ।

प्रथम परिच्छेद ।

आयेशा ।

जगतसिंह की आंख खुली तो देखा कि एक सुन्दर महल में पलंग के ऊपर पड़े हैं, कोठरी अति प्रशस्थ और सुशोभित है, पत्थर के चट्टान पर एक बहुमूल्य 'गलीचा' पड़ा है और उसपर सोने चांदी के गुलाबपाश इत्रदान, इत्यादि धरे हैं, द्वारों में खिड़कियों में और झरोखों में धानी परदे पड़े हैं और चारों ओर से सुन्दर सुगन्ध आ रही है।

परन्तु घर सूनसान था, केवल एक किंकरी खड़ी चुपचाप पंखा झल रही थी और एक दूसरी उसके पीछे खड़ी देख रही थी। जिस पलंग पर जगतसिंह सोते थे उसके एक तरफ एक स्त्री बैठी उनके चोटों में औषध लेपन कर रही थी और गलीचे पर एक सुवेषित यवन बैठा पान खा रहा था और आगे उसके एक फ़ारसी पुस्तक धरी थी। किन्तु सब सन्नाटे में थे, किसीके मुंह से शब्द नहीं निकलता था राजपुत्र ने चारो ओर देखा और चाहा कि करवट ले पर शरीर की वेदना के कारण फिरा नहीं गया।

पार्श्ववर्त्ती स्त्री ने राजकुमार की यह दशा देख धीरे से कहा 'चुपचाप पड़े रहो हिलो डोलो न।'

राजकुमार धीमे स्वर से बोले 'मैं कहां हूं ?'

उस स्त्री ने कहा 'आप चुपचाप रहें चिन्ता न करें।'

राजपुत्र ने फिर धीरे से पूछा 'कै बजे होंगे ?'

स्त्री ने कहा 'दोपहर होगई। आप चुप रहिये बोलने से घाव टूटने का भय रहता है और नहीं तो हमलोग जाते हैं।'

राजपुत्र ने दीनता प्रकाश पूर्वक फिर पूछा 'तुम कौन हो?'

स्त्री ने कहा 'हमारा नाम आयेशा है।'

राजकुमार चुपरहे और उसका मुंह देखने लगे। इस व्यापार को अभी तक किसी ने नहीं देखा था।

आयेशा २२ वर्ष से ऊपर न थी किन्तु उस की सुन्दरता शब्दों द्वारा प्रकाश करना बड़ा कठिन है तिलोत्तमा भी परम सुन्दर थी पर इसमें और उसमें बड़ा भेद था। तिलोत्तमा नवकलिका की भांति कोमल, सकुचित और निरमल स्वभाव यौवन के रस से अज्ञात थी मुख पर उसके भोलापन चमकता था। नेत्र हाव भाव और कामकटाक्ष को जानते ही न थे शरीर का भी उसको अभी अच्छा ज्ञान न था बालापन प्रत्येक अङ्ग से टपकता था। पर आयेशा ऐसी न थी। वह प्रातका-लीन नलिनी की भांति बिकसित सुवासित और रसपरिपूर्ण थी। शरीर की आभा गृह को दीप्तमान करती थी। यदि बिमला की तुलना इससे करें तो भी नहीं हो सकती क्योंकि वह सुन्दर तो अवश्य थी परन्तु गृहस्थी के कर्म करने से उसके हाथ पैर कठोर थे और शरीर भीतर से पोला था। यदि तिलोत्तमा के शरीर की प्रभा बालशशि की भांति थी तो बिमला की तैलाधीन दीपक के समान थी और आयेशा की मध्यान्ह पूर्व मार्त्तण्डरश्मि की भांति जिसपर पड़ती थी वह खिल उठता था।

जैसे उद्यान में पद्म का फूल शोभा देता है उसी प्रकार आयेशा से इस आख्यान की शोभा है। यदि कोई चित्रकार अपनी लेखनी लेकर इस अलेख रूपराशि का प्रतिबिम्ब उतारने की चेष्टा कर बैठता तो निश्चय है कि एक बेर उसको मूर्छा अवश्य आ जाती और ज्ञानशून्य हो जाता। पहिले तो उसको चम्पकरक्त और श्वेतवर्ण के अन्तर्गत शरीर के रङ्ग का रङ्ग कहां मिलता? फिर प्रशस्थ ललाट के लिखने के समय मन्मथ के रङ्ग भूमि का ध्यान न जमता मस्तक मध्य विलगित केश अर्द्ध चन्द्राकार जूड़ा पर्य्यन्त काकपक्ष की भांति कर्णदेश के ऊपर से घुमाने के समय हाथ अवश्य कांप जाता। निर्मल सुरसरिधार के निसृत स्थान से किञ्चित दूर पर बांकी भ्रूश्रेवाल के नीचे पलक पक्ष संचारित ख़ञ्जन की जोड़ी प्रसन्नता पूर्वक खेलती हुई कदापि न बन सकती। उसके नीचे कीरबिम्ब फल के ऊपर बैठा हुआ कपोल की पीठ पर जिसके दोनों ओर दो भुजङ्ग हों केलि कर रहा हो और बीच में सिंहासन पर दो शालिग्राम की बटिया सरोवर के तीर पर धरी हों ऐसा रूप कब बन सकता है। सारांश जिसको विधना ने स्वयं अनुपम बना दिया उसकी उपमा मनुष्य बापुरा क्या बना सकेगा। ऊपर की लाद बना कर अतिक्षीन लंक को ऊर्ध्व भार सहने के अयोग्य समझ उसने नीचे दो स्तंभ खड़े कर दिये अब भी चलते समय लच खाकर शरीर के दोहरा हो जाने का भय मन में लगा ही रहा। राजकुमार बहुत काल पर्य्यन्त आयेशा को देखते रहे और तिलोत्तमा का ध्यान आ गया और हृदय विदीर्ण होकर शरीर क्षत द्वारा रुधिर वेग से बहने लगा। फिर मूर्छा आई और उन्होंने आंख बन्द कर ली।

स्त्री जो पलङ्ग पर बैठी थी डर कर खड़ी होगई और

पुस्तक पाठ करनेवाला यवन उसके मुंह की ओर देखने लगा । वह उठकर धीरे २ यवन के समीप जाकर उसके कान में बोली —

'उसमान शीघ्र वैद्य के समीप किसीको भेजो ।'

दुर्गजयी उसमान ही गलीचे पर बैठा था । आयेशा की बात सुनकर उठ गया ।

आयेशा ने एक रूपे का बर्तन उठा उसमें से जलवत एक वस्तु लेकर राजपुत्र के मुख और मस्तक पर छिड़का ।

उसमानखां भी शीघ्रही लौट आया और चिकित्सक को लेता आया । उसने अपनी बुद्धि के अनुसार यत्न कर लहू का बहना बन्द किया और अनेक औषध आयेशा के पास रख उनके सेवन की विधि बताने लगा ।

आयेशा ने धीरे से पूछा 'अब क्या बोध होता है ?'

भिषक ने कहा–'ज्वर बहुत है ।'

वैद्य को जाते देख उसमान ने द्वार पर जाकर उसके कान में कहा 'बचने की आशा है कि नहीं ?"

भिषक ने उत्तर दिया "लक्षण तो नहीं हैं पर ईश्वर की गति जानी नहीं जाती अब फिर कोई विशेष क्लेश हो तो हम को बुला लेना ।"

दूसरा परिच्छेद ।

पाषाण संयुक्त कुसुम ।

उस दिन आयेशा और उसमान बड़ी रात तक जगतसिंह के समीप बैठे थे । कभी उनको चेत होजाता था और कभी मूर्छा आ जाती थी । भिषक भी कई बेर आए और गए

आयेशा चित्त लगाकर राजकुमार की सेवा करती थी जब आधी रात हुई एक परिचारिका ने आकर कहा " बेगम तुम को बुलाती हैं । "

' अच्छा जाती हूं ' कह कर आयेशा उठी । उसमान भी उठे । आयेशा ने पूछा ' तुम क्यों उठे ? '

उसने कहा ' रात बहुत गई है चलो तुमको पहुंचाय आवें ।'

आयेशा दास दासी को सावधान रहने की आज्ञा दे माता के घर चली । मार्ग में उसमान ने पूछा ' आज क्या तुम बेगम के पास रहोगी ? '

आयेशा ने कहा ' नहीं मैं अभी राजपुत्र के पास लौट आऊंगी । ' उसमान ने कहा ' आयेशा, तुम्हारे गुण का बखान मैं क्या करूं तुम इस परम शत्रु के ऊपर इतनी दया प्रकाश करती हो कि बहिन भाई पर न करेगी । तुम ने मानो इसको प्राण दान दिया ।

आयेशा हँसने लगी और बोली ' उसमान ' मेरा तो यह स्वभाव है । दुखी की सेवा करना तो मेरा धर्म है, यदि न करूं तो दोष है और करने में कुछ प्रशंसा नहीं । किन्तु तुम्हारा तो वह शत्रु है रण में तुम्हारे उसके परामर्ष हुआ था और तुम्हीं ने उसकी यह दशा की है तुम उस पर इतनी कृपा करते हो तुम्हारी निस्सन्देह प्रशंसा है । '

उसमान ने कहा ' आयेशा, तुम अपने सुन्दर स्वभाव के कारण सब को समान समझती हो । मेरा अभिप्राय वैसा नहीं है, तुम नहीं जानती हो कि जगतसिंह की रक्षा से हमलोगों को कितना लाभ है उनकी मृत्यु से हमारी हानि है । कुछ मानसिंह लड़ाई में जगतसिंह से कम नहीं हैं । एक योद्धा नहीं दूसरा आवेगा किन्तु जगतसिंह यदि जीता हमारे हाथ

में रहे तो मानसिंह को अपनाते कितनी देर है । वह अपने पुत्र के छुड़ाने की लालसा से अवश्य संधि करेगा और अकबरशाह भी ऐसे वीर सेनापति के छुड़ाने की इच्छा करेंगे । और यदि स्वयं जगतसिंह को हमलोग अपने हितसत्कार द्वारा बाधित कर सकें तो वह कृतज्ञता पालन पूर्वक हमारे मन का मेल करा देगा, उसके किये यह होसक्ता है । यदि और कुछ न हो तो मानसिंह अपने पुत्र के छोड़ाने के लिये रुपया बहुत देगा । एक दिन की विजय की अपेक्षा जगतसिंह का जीता रहना विशेष उपकार कारक है ।'

उसमान ऊर्ध्व लिखित बातों को सोच विचार तन मन से राजकुमार के पुनर्जीवन का उद्योग करता था किसी २ का ऐसा भी स्वभाव होता है कि यदि लोग उनको दयावन्त कहें तो लज्जा आती है अतएव बाहर से कठिनता धारण किये रहते हैं । उसमान का भी ऐसा ही स्वभाव देख आयेशा हँस कर बोली 'उसमान ! यदि सब का चित्त तुम्हारे ऐसा होता तो फिर धर्म का कुछ काम न था' ।

उसमान इधर उधर की बातें कर बोला 'आयेशा ! अब तो मुझ से रहा नहीं जाता, कब तक लव लगाये रहूं ?'

आयेशा के मुंह पर गम्भीरता आ गयी । उसमान उसकी ओर देखने लगा । उसने कहा 'उसमान हम तुम भाई बहिन की भांति एक स्थान पर उठते बैठते हैं यदि तुम्हारे मन में कुछ और है तो अब मैं तुम्हारे सामने निकलूंगी भी नहीं । उसमान का मुंह मलीन होगया और बोला ।'

'हे करतार ! क्या तूने इस कोमल कुसुम शरीर को पाषाण हृदय संयुक्त बनाया है !' और आयेशा को माता के गृह पहुंचाय उदास मन अपने घर को लौट आया

और जगतसिंह ?

विषम ज्वर में पड़े शय्या पर भुगत रहे हैं ।

तीसरा परिच्छेद ।

तुम तिलोत्तमा नहीं हो ?

दूसरे दिन सन्ध्या को जगतसिंह की कोठरी में उसमान और चिकित्सक चुपचाप बैठे थे आयेशा पलङ्ग पर बैठी हाथ से पंखा झल रही थी । चिकित्सक नाड़ी देख रहा था और जगतसिंह अचेत पड़े थे । चिकित्सक ने कहा 'आज की रात ज्वर उतरने पर यदि प्राण बच जाय तो फिर कुछ चिन्ता नहीं । अब वह समय आता जाता है । '

सब का मन व्यग्र हो रहा था, चिकित्सक भी बार २ नाड़ी देखता था और 'अब नाड़ी बहुत सुस्त चलती है' 'अब तो कहीं मिलती ही नहीं' 'देखो यह चल रही है' कहता था । एकाएक उसका मुंह श्याम होगया और बोला 'देखो अब समय आ गया । '

आयेशा और उसमान कान लगाकर सुनते थे और भिषक नाड़ी पकड़े बैठा था ।

थोड़ी देर बाद वैद्य ने कहा 'नाड़ी बहुत धीमी चलती है' आयेशा का मुंह और सूख गया और जगतसिंह के मुंह की भी आकृति बिगड़ चली बरन कुछ टेढ़ापन भी आ गया और श्वेतता छा गयी, हाथों की मुट्ठी बन्ध गयी आंखें घूम गयीं । आयेशा ने जाना कि अब कुछ आशा नहीं, काल आन पहुंचा । चिकित्सक हाथ में एक शीशी लिये बैठा था जगतसिंह की इस अवस्था को देख उनका मुंह चीर औषधी भीतर डाल दी किन्तु वह ओठों द्वारा निकल पड़ी कुछ थोड़ीसी पेट में गयी ।

ध्वा ने भीतर जातेही अपना प्रभाव दिखाया, शरीर का रङ्ग पलटने लगा स्थूलता जाती रही, रक्त का संचार होने लगा, हाथ की मुट्ठी खुल गई और आंख भी खुलने लगी । हकीम ने फिर नाड़ी देखी और किंचित्‌काल के अनन्तर हर्षयुत बोला 'अब कुछ भय नहीं अब काल टल गया ।'

उसमान ने पूछा 'ज्वर उतर गया ?'

भिषक ने कहा 'हां ।'

आयेशा और उसमान दोनों इस बात को सुन कर, प्रसन्न हुए ?

भिषक ने कहा 'अब किसी बात की चिंता नहीं है मैं जाता हूं इस औषध को आधी रात तक देते जाना' और आप चला गया उसमान भी अपने घर चला गया केवल आयेशा पलङ्ग पर बैठी जगतसिंह की सेवा कर रही थी ।

आधी रात के किंचित् पूर्व राजकुमार ने नेत्र खोला और आयेशा और उनकी चार आंखें हुईं । उस समय आयेशा को राजकुमार की चेष्टा देख बोध हुआ कि वे किसी वस्तु का स्मरण कर रहे हैं परन्तु श्रम निष्फल होता है । आयेशा की ओर किंचित्‌काल देख कर बोले 'मैं कहां हूं ?' दो दिन में यही शब्द पहिले पहिल उनके मुंह से निकला ।

आयेशा ने कहा 'कतलूखां के दुर्ग में' ।

राजकुमार फिर कुछ स्मरण करने लगे और बोले 'मैं यहां कैसे आया' ?

पहिले आयेशा चुप हो रही फिर बोली 'आप पीड़ित जो हैं ।' राजकुमार ने लक्षण समझ सिर को हिला कर कहा 'नहीं नहीं बन्दी हूं ।' और चेहरे का रङ्ग पलट गया ।

आयेशा ने कुछ उत्तर न दिया ।

फिर राजपुत्र बोले 'तुम कौन हो ?'

'मेरा नाम आयेशा है।'

'आयेशा कौन ?'

'कतलू खाँ की बेटी।'

राजपुत्र फिर चुप रह गए क्योंकि अभी उनको इतनी शक्ति तो थी ही नहीं स्वासा चलने लगी। जब फिर कुछ स्थिरता आई तो बोले 'हमको इस स्थान पर के दिन हुए ?'

'चार दिन।'

'मन्दारणगढ़ अभी तुम्हारे अधिकार में है ?'

'हां है।'

फिर जगतसिंह का दम फूलने लगा और कुछ थम कर बोले—'बीरेन्द्रसिंह की क्या दशा हुई ?'

'बीरेन्द्रसिंह कारागार में है आज उनका विचार होगा'।

जगतसिंह के मुंह पर और भी उदासी छा गई पूछा 'और २ परिजनों की क्या गति हुई ?

आयेशा उकता कर कहने लगी 'मैं सम्पूर्ण समाचार नहीं जानती।'

राजपुत्र अपने मन में सोचने लगे और उनके मुंह से एक नाम निकला आयेशा ने उसको सुन लिया—'तिलोत्तमा।'

आयेशा उठकर औषध लेने गई उस समय की शोभा युवराज के मनमें बस गयी और वे उसी की ओर देखने लगे। उसने औषध लाकर दिया और राजपुत्र ने पान करके कहा—

'मैंने स्वप्न में देखा है कि स्वर्गीय देवकन्या मेरे सिरहाने बैठी शुश्रूषा कर रही है वह तुम्हीं हो न तिलोत्तमा ?'

आयेशा ने कहा 'आपने तिलोत्तमा को स्वप्न में देखा होगा।'

चौथा परिच्छेद ।

घूंघटवाली ।

दुर्ग जय करने के दूसरे दिन पहर दिन चढ़े कतलूखां का 'दरबार' हुआ । पारिषद लोग श्रेणीबद्ध दोनों ओर खड़े थे और सामने शतशः मनुष्य चुपचाप देख रहे थे । आज बीरेन्द्रसिंह का बिचार होनेवाला है ।

कई सिपाही अस्त्र बांधे बीरेन्द्रसिंह के हाथ में हथकड़ी और पैर में बेड़ी डाले उपस्थित हुए । यद्यपि उनका शरीर रक्त वर्ण हो रहा था पर मुंह पर भय का कोई चिन्ह नहीं था। आंखों से आग बरसती थी नाक का सिरा फरफराता था और दांत ओठों को खाये जाते थे । बीरेन्द्रसिंह को देख कतलू खां ने पूछा 'बीरेन्द्रसिंह ! आज मैं तुम्हारे अपराध का विचार करने बैठा हूं बताओ तुमने हमसे बिरोध क्यों किया ?'

बीरेन्द्रसिंह ने क्रोध करके कहा 'पहिले तुम यह तो बतलाओ कि हम ने क्या बिरोध किया' ।

एक पारिषद ने कहा 'बिनीत भाव से बात करो ।

कतलू खां ने कहा 'तुमने क्यों हमारी आज्ञा के अनुसार हमको द्रव्य और सेना नहीं भेजी ?'

बीरेन्द्रसिंह ने निःशंक कहा ' तुम राजद्रोही लुटेरों को हम क्यों द्रव्य दें ? और सेना दें ?'

कतलू खां का कलेवर कोप से कांपने लगा किन्तु रोष को रोक कर बोला 'तुम ने हमारे अधिकार में रह कर मोगलियों से क्यों मेल किया ?'

बीरेन्द्रसिंह ने कहा ' तुम्हारा अधिकार कहां है ?'

कतलू खां को और कोप हुआ 'सुनरे दुष्ट जैसा तूने क्रिया

है वैसा भोगेगा । अभी तो तेरे जीने की आशा थी पर तू ने अपने हाथ से वह बिगाड़ा ।'

बीरेन्द्रसिंह गर्व पूर्वक हंस कर बोले कतलू खां–मैं हाथ पैर बंधा कर तुम्हारे समीप दया की आशा कर के नहीं आया हूं जिस का जीवन तुम्हारी दया के आधीन है उसका जीनाही क्या ? यदि तुम केवल मेराही प्राण ले कर सन्तुष्ट होते तब भी मैं तुमको आशीर्वाद देता परन्तु तुमने तो हमारे कुल का नाश कर डाला और प्राण से भी अधिक तुमने हमारे– बीरेन्द्रसिंह के मुंह से और बात नहीं निकली कंठ रुंध गया आंखों से पानी बहने लगा । भय हीन दाम्भिक बीरेन्द्रसिंह सिर नीचे करके रोने लगे ।

कतलू खां तो सहज निठुर था । वरन उसको पराय: दुख देख कर उल्लास होता था बीरेन्द्रसिंह को इस अवस्था में देखकर उसको हंसी आयी और बोला 'बीरेन्द्रसिंह ! कुछ मांगना हो तो मांग लो अब तुम्हारी घड़ी आगयी । रोते २ बीरेन्द्रसिंह की छाती कुछ ठंढी हुई और बोले 'मुझको और कुछ न चाहिये अब शीघ्र मेरे वध की आज्ञा दीजिये ।'

क०—' यह तो होहीगा और कुछ ? '

' अब इस जन्म और कुछ न चाहिये । '

' मरती समय अपनी कन्या से भेंट नहीं करोगे ? '

इस शब्द को सुन कर बीरेन्द्र सिंह के हृदय पर नया घाव लगा । ' यदि हमारी कन्या तुम्हारे घर में जीती है तो उसको न देखूंगा और यदि मरगयी हो तो लाओ उसको गोद में लेकर मरूं । ' दर्शकगण चुपचाप दांत तले उंगली दबाये इस कौतुक को देख रहे थे ।

नवाब की आज्ञा पाय ' रक्षक बीरेन्द्रसिंह को वध भूमि

की ओर ले चले। मार्ग में एक मुसलमान ने बीरेन्द्रसिंह के कान में कुछ कहा परंतु उन्होंने सुना नहीं तब एक पत्र उनके हाथ में दिया। उसको खोल कर उन्होंने देखा कि बिमला का लिखा है और मींज मांजकर फेंक दिया उस मुसलमान ने उसको उठा लिया और चला गया। निकटवर्त्ती एक दर्शक ने अपने एक मित्र से धीरे से कहा 'जान पड़ता है यह पत्र इसकी कन्या का है।'

बीरेन्द्रसिंह इस बात को सुन उसकी ओर फिर कर बोले 'कौन कहता है कि हमारी कन्या है? हमारी कन्या नहीं है।'

पत्रवाहक ने पत्र ले जाते समय रक्षकों से कहा था जब तक हम न आवें तुम यहीं ठहरे रहना।

उन्होंने उत्तर दिया 'अच्छा सरकार।'

यह मनुष्य उसमान था इसी लिये रक्षकों ने सरकार कहा।

उसमान हाथ में चिट्ठी लिये चार दीवारी के समीप गया। उस स्थान पर एक वृक्ष के नीचे घूंघट काढ़े एक स्त्री बैठी थी। उसके समीप पहुंच कर उसमान ने सब वृत्तांत कह सुनाया। घूंघटवाली ने कहा 'आपको क्लेश तो बहुत होता है पर हम लोगों की यह दशा आपही के कारण हुई है। आप को फिर यह काम करना पड़ेगा' उसमान चुप रह गया।

घूंघटवाली ने रोकर कहा 'न करोगे न सही। अब तो मैं अनाथ हो गयी केवल ईश्वर रक्षा करनेवाला है'

उसमान ने कहा 'माता! तुम नहीं जानती हो। यह काम बड़ा कठिन है। यदि कतलू खां सुन पावे तो मरवा डाले'! स्त्री ने कहा 'कतलू खां—क्यों हमको डराते हो। उसकी सामर्थ नहीं जो तुम्हारा बाल बांका कर सके।'

उ०—तुम कतलू खां को चीन्हती नहीं हो अच्छा चलो

हम तुम को वध भूमि में ले चलें।

उसमान के पीछे २ स्त्री वध भूमि में आकर चुपचाप खड़ी हुई। बीरेन्द्रसिंह एक भिखारी ब्राह्मण से बात कर रहे थे इससे इसको नहीं देखा। घूंघटवाली ने घूंघट हटा कर देखा तो वह ब्राह्मण अभिराम स्वामी था।

बीरेन्द्रसिंह ने अभिराम स्वामी से कहा 'गुरुदेव अब मैं बिदा होता हूं। और मैं आप से क्या कहूं इस लोक में अब मुझको और कुछ न चाहिये।'

अभिराम स्वामी ने उंगली से पीछे खड़ी घूंघटवाली स्त्री को दिखाया। बीरेन्द्रसिंह ने मुंह फेर कर देखा और घूंघट-वाली झपट घूंघट हटा बेड़ी बद्ध बीरेन्द्रसिंह के चरण पर गिर पड़ी।

बीरेन्द्रसिंह ने गद्‌गद्‌ स्वर से पुकारा 'बिमला!'

किन्तु बिमला रोने लगी।

'हे प्राणनाथ! हे स्वामी! हे राजन्! अब मैं कहां जाऊं। स्वामी मुझको छोड़कर तुम कहां चले? मुझको किसको सौंपे जाते हो। हा प्रभू।'

बीरेन्द्रसिंह की आंखों से भी आंसू गिरने लगे। हाथ पकड़ कर बिमला को उठा लिया और बोले 'प्यारी! प्राणे-श्वरी! क्यों तू मुझको रोलाती है। शत्रु देख कर मुझको कायर समझेंगे।'

बिमला चुप रही। बीरेन्द्रसिंह ने फिर कहा 'बिमला! मै तो अब जाता हूं तुम लोग मेरे पीछे आना।'

बिमला ने कहा 'आऊंगी तो।'

(और धीरे से जिसमें और लोग न सुनें) आऊंगी तो परंतु इस दुख का प्रतिशोध करके आऊंगी।'

बीरेन्द्रसिंह का मुखमंडल दीप्तमान हो गया और बोले- 'हां!' बिमला ने दहना हाथ दिखला कर कहा 'इस हाथ का कंकण भी मैंने उतार दिया अब उसका क्या काम है, अब इस को केवल अस्त्र, छूरी आदि भूषण पहिराऊंगी।'

बीरेन्द्रसिंह ने प्रसन्न होकर कहा 'ईश्वर तेरी मनोकामना पूरी करें।'

इतने में जल्लाद ने चिल्ला कर कहा अब 'मैं नहीं ठहर सक्ता।

बीरेन्द्रसिंह ने बिमला से कहा 'बस अब तुम जाओ।'

बिमला ने कहा 'नहीं, मैं अपनी आंखों से देख लूंगी आज मैं तुम्हारे रुधिर से अपने लाज संकोच को धो डालूंगी।'

'अच्छा जैसी तेरी इच्छा' कहकर बीरेन्द्रसिंह ने जल्लादों को संकेत किया। बिमला देखती रही इतने में ऊपर से कठिन कुठार गिरा और बीरेन्द्रसिंह का सिर मुलोटन कबूतर की भांति पृथ्वी पर लोटने लगा। वह चित्र लिखित कीसी खड़ी रही न तो उसके आखों में आंसू आए और न मुंह का रंग पलटा यहां तक कि पलक भी नहीं गिरती थी।

पांचवां परिच्छेद ।

बिधवा ।

तिलोत्तमा क्या हुई? वह पिता हीन अनाथ कन्या क्या हुई? बिमला भी क्या हुई? कहां से आकर उसने बध भूमि में अपने स्वामी का मरण देखा था? और फिर कहां गयी?

बीरेन्द्रसिंह ने मरते समय अपनी प्रिय कन्या को क्यों नहीं देखा वरन नाम लेते क्रोध के मारे शरीर कांपने लगा? और 'हमारी कन्या नहीं है' कहने का क्या प्रयोजन था? बिमला के पत्र को बिना पढ़े क्यों फेंक दिया?

कतलूखां के सामने वीरेन्द्रसिंह ने जो तिरस्कार किया था उसका स्मरण करो—'तुम ने मेरे उज्वल कुल में कालिमा लगायी, तिलोत्तमा और बिमला दोनों कतलूखां के उपपत्नी ग्रह में मिलेंगी। संसार की यही गति है! विधना की करतूत ऐसी ही है! रूप, यौवन, सरलता अमलता इत्यादि सब कालचक्र के नीचे पड़कर नष्ट हो जाते हैं।

कतलूखां का नियम था कि जब कोई दुर्ग वा ग्राम पराजय होता था यदि उसमें कोई यौवनवती मनमोहनी पकड़ी जाती तो वह उसकी सेवा में भेजी जाती थी। मान्दारणगढ़ के जय होने के दूसरे दिन कतलूखां ने वहां जाकर बन्दीजनों को यथायोग्य आज्ञा दी और उनकी रक्षा के निमित्त सेना नियोजित की। बिमला और तिलोत्तमा को अपने 'हाथ' में लेआने की आज्ञा दी। इसके अनन्तर और और कामों में लगा रहा। उसने यह सुना था कि राजपूत सेना अपने सेनप जगतसिंह के बन्दी होने का समाचार सुन कहीं आस पास आक्रमण करने के उद्योग में है अतएव तद्विषय उचित प्रबन्ध करने लगा और इसी कारण उसको अपने नवप्राप्त दासी की सेवा के स्वाद लेने का समय नहीं मिला।

विमला और तिलोत्तमा दोनों दो स्थान पर रक्खी गयीं जिस स्थान में पिताहीन तिलोत्तमा अपने हेमबरण शरीर को धूलिधूसरित कर रही थी उसके देखने की चेष्टा पाठकों के मन में कदापि न होगी क्योंकि बने २ के तो सब साथी होते हैं बिगड़े पर कोई बात नहीं पूछता। वसन्त ऋतु में वारिसंचारित सुन्दर सुगंधमय नवलता को हिलते हुए देख किसका मन नहीं चलायमान होता? वही लता जब किसी आंधी के कारण अपने आधार वृक्ष समेत भूमि पर गिर पड़ती है तो

वृक्ष को सबलोग देखते हैं लता को कोई नहीं देखता। लकड़हारे लकड़ी काट लेजाते हैं और वह लता पैरों के नीचे कुचल जाती है।

अब जहां चपल, चतुर, रसिक, दुःखी किन्तु धीरधारी मलिन रूप बनाये बिमला बैठी है वहां चलो।

क्या यही बिमला है? है? है? है! यह क्या दशा हुई, माथे में धूलि भरी है। वह बनारसी दुपट्टा क्या हुआ? वह कारचोबी अंगिया भी तो नहीं है। वस्त्र भी मैला हो गया है और कई स्थान पर फटा भी है। शरीर पर कोई आभरण भी नहीं है। आंखें फूल आई हैं। वह कटाक्ष भी नहीं है। मस्तक में घाव कैसा है? रुधिर बह रहा है।

बिमला उसमान की परीक्षा लेती है।

पठान कुल तिलक उसमान सर्वदा युद्ध को अपना साधन और धर्म समझता था और जय सिध्यार्थ कोई उपाय उठा नहीं धरता था किन्तु पराजितों पर निष्प्रयोजन किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होने देता था। यदि कतलूखां स्वयं बिमला और तिलोत्तमा के पीछे न पड़ता तो उसमान उनको किसी प्रकार बन्दी न होने देता। उसी की कृपा से बिमला ने अपने मरते स्वामी का मुंह देखने पाया था और जब उसने जाना कि वह बीरेन्द्रसिंह की स्त्री है उस दिन से और भी दया करने लगा?

उसमान कतलूखां का भतीजा था इस लिये वह अन्तःपुर इत्यादि सब स्थानों में जासक्ता था। जहां कतलूखां का बिहार-गृह था वहां उसका पुत्र भी नहीं जासक्ता था और उसमान भी नहीं जा सक्ता था किन्तु उसमान कतलूखां का दाहिना हाथ था उसी के पराक्रम से उडिस्सा अधिकार दामोदर नदी

पर्यन्त पहुंचा, अतएव पुरजन सब उसको कतलूखां के समान जानते और मानते थे।

इसीलिये आज प्रातःकाल बिमला के प्रार्थनानुसार मरते समय उससे उसके पतिसे साक्षात हुआ।

बिमला ने अपने बिधवा होनेके दूसरे दिन जो कुछ अलंकार उसके पास था उसने उतार कर कतलूखां नियोजित दासी को दे दिया।

दासी ने पूछा 'मुझको क्या आज्ञा होती है'।

बिमला ने कहा 'जैसे तू कल उसमान के पास गई थी उसी प्रकार एक बेर और जाओ, कहो कि मैं उनको देखा चाहती हूं। और यह भी कहना कि इस बेर से बस अब तीसरी बार क्लेश न दूंगी।'

दासी ने जाकर वैसाही कहा। उसमान ने कहला भेजा उस महल में हमारे जाने से दोनों की हानि है, उनसे कहो कि हमारे घर आवें।

बिमला ने पूछा 'मैं जाऊंगी कैसे?' दासी ने उत्तर दिया कि उन्होंने कहा है 'मैं उपाय कर दूंगा!'

सन्ध्या समय आयेशा की एक दासी आकर प्रहरी से कुछ कह बिमला को उसमान के समीप ले चली।

उसमान ने कहा 'मैं तुम्हारा और कोई उपकार कर सक्ता हूं?'

बिमला ने कहा एक छोटीसी बात है 'राजकुमार जगतसिंह अभी जीते हैं?'

उ।—हां जीते हैं।

बि।—स्वाधीन हैं कि बन्दी?

उ।—बन्दी तो हैं पर अभी कारागार में नहीं गए हैं।

उनके शरीर में अस्त्रों के घाव बहुत हैं इसलिये अभी चिकित्सालय में हैं ।

बिमला ने सुनकर कहा ' सब अमंगलही है । भाग्य को क्या करें ! जब राजपुत्र आरोग्य हो जांय मेरी यह याचना है कि यह पत्र उनको दे देना अभी अपने पास रक्खो । '

उसमान ने पत्र फेर कर कहा ' यह काम हमारे योग्य नहीं है । राजपुत्र चाहे किसी अवस्था में हों बन्दी तो हैं । बन्दियों के पास बिना पढ़े हम लोग कोई पत्र नहीं जाने देते और स्वामी की आज्ञा भी ऐसी ही है ।'

बिमला ने कहा , इसमें कुछ आप की निन्दा स्तुति नहीं लिखी है आप संशय न करें । और स्वामी की आज्ञा ? स्वामी तो आपही हैं । '

उसमान ने कहा ' और २ कामों में तो मैं पिता के बिरुद्ध कर भी सक्ता हूं पर ऐसे विषयों में कुछ नहीं कर सक्ता । तुम्हारा कहना है कि इस पत्र में कोई बुरी बात नहीं लिखी है मै मानता हूं पर नियम बिरुद्ध नहीं कर सक्ता । मुझ से यह काम न होगा ' ।

बिमला ने उदास होकर कहा ' अच्छा तो पढ़कर दे देना । '

उसमान ने पत्र ले लिया और पढ़ने लगे ॥

छठवां परिछेद ।

बिमला का पत्र ।

' युवराज ! मैं ने वचन दिया था कि एक दिन पता बताऊंगी । आज वह दिन आगया, मैंने स्थिर किया था कि तिलोत्तमा को राजसिंहासन पर बैठा कर पता बताती पर वह न

होने पाया अब तो यह बोध होता है कि कुछ दिन में सुझे में आवेगा कि तिलोत्तमा भी एक थी और उसके सङ्ग बिमला भी कोई थी इसी लिये आपको यह पत्र लिखती हूं । मैं बड़ी पापिन हूं मैंने अनेक अनुचित कर्म किये हैं । जब मैं मर जाऊंगी लोग निन्दा करेंगे और मुझ को अपवादक कहेंगे उस समय कौन मुझको कलंकशून्य सिद्ध करेगा ? ऐसा कौन हितकारी है ? हां एक है और वह थोड़ेही दिनों में इस लोक को त्याग परलोक को सिधारेगा, अभिराम स्वामी से मैं उरिन नहीं हो सकी । मैंने विचारा था कि एक दिन आपकी दासियों में मैं भी हूंगी । आपने भी एक दिन हमारे निजों की भांति काम किया है । हा ! मैं यह बात किस्से कह रही हूं ? अभागिनियों के दुर्भाग्य ने संपूर्ण हितकारियों का नाश करडाला । जो हो आप हमारी इस बात का स्मरण रखना । जब लोग हमको कुलटा और गणिका कहेंगे तो आप कहियेगा कि विमला नीच थी, अभागिन थी किन्तु गणिका नहीं थी । जिनका अभी परलोक हुआ है उनके साथ इस दासी का शास्त्रनियमानुसार पाणिग्रहण हुआ था । विमला विश्वासघातिनी नहीं है ।

अद्यपर्यन्त यह बातें छिपी थीं आज इसको कौन पतियाता है ? यदि पत्नी थी तो दासी का काम क्यों करती थी ? सुनिये मान्दारणगढ़ के समीपवर्ती एक ग्राम में शशिशेखर भट्टाचार्य रहते थे । युवा अवस्था में उन्होंने रीत्यानुसार विद्याध्ययन किया किन्तु इस्से उनका स्वाभाविक दोष दूर नहीं हुआ । और सब गुण उनमें बहुत अच्छे थे केवल एक दोष था किन्तु वह तो जवानी का दोष था ।

मान्दारणगढ़ के जयधरसिंह के एक सेवक की स्त्री बड़ी सुन्दर थी । स्वामी उसका सेना में सिपाही था इसकारण

प्रायः बाहर रहा करता था । शशिशेखर की आंख उसपर पड़ी थोड़ेही दिनों में उसका पैर भर आया ।

अग्नि और पाप दोनों छिप नहीं सके यह बात शशिशेखर के बाप के कान तक पहुंची । उन्होंने कुलकलंक के छुड़ाने के लिये उस स्त्री के स्वामी को तुरन्त बुलवा भेजा और अपने पुत्र का उचित शासन किया । इस अपमान के कारण शशिशेखर उदास होकर घर से चल दिये और काशी में पहुंचे । वहां एक महान पण्डित का नाम सुन उन्हीं के पास पढ़ने-लगे । वेद में अच्छे थे ज्योतिष में भी बहुत बढ़े, अध्यापक का भी मन पढ़ाने में लगने लगा ।

शशिशेखर एक शूद्री के गृह के समीप रहते थे उसकी एक जवान कन्या थी वह प्रायः भट्टाचार्य महाराज की सेवा में रहा करती थी उस को इनसे गर्भ रह गया और मेरा जन्म हुआ । सुनतेही गुरु ने कहा ' शिष्य ! मेरे यहां पापियों का काम नहीं है । जाओ अब काशी में मुंह न दिखलाना ।

शशिशेखर लज्जा के मारे काशी से चल दिये और मेरी माता को भी घर से निकाल दिया ।

बेचारी मुझको लेकर एक मड़ैया में रहने लगी और मजूरी करके पेट पालती थी । कोई बात नहीं पूछता था । पिता का भी कुछ समाचार नहीं मिला । कई वर्ष के अनन्तर एक धनी पठान बंगदेश से दिल्ली जाते समय काशी में उतरा था रात के कारण कहीं टिकने को स्थान नहीं मिलता था । उसके सङ्ग में उसकी स्त्री और एक छोटासा बालक भी था । उन्होंने हमारी मा की मड़ैया के समीप आकर निवेदन करके रात के टिकने की आज्ञा मांगी । पठान के सङ्ग एक सेवक भी था । माता मेरी दरिद्र तो थी पर दयालु भी थी । धन की लालच से

था जैसे ही उसने उनको स्थान दिया और एक ओर दीप जला कर पठान और उसके साथी लेटे।

उन दिनों काशी में लड़के बहुत चोरी जाते थे। मैं छः वर्ष की थी मुझको सुध नहीं है किन्तु माता के मुंह से जैसा सुना है कहती हूं।

रात को दीप जल रहा था कि एक चोर सेन देकर पठान के बालक को ले चला। मेरी आंख खुली और मैंने चोर को देखा। उसको बालक ले जाते देख मैं चिल्लाई और सब जाग पड़े।

पठान की स्त्री ने देखा कि शय्या पर बालक नहीं है और चिल्लाने लगी। चोर उस समय चारपाई के नीचे था पठान ने उसका बाल पकड़ कर खींच लिया। जब चोर ने बहुत बिन्ती की तो उन्होंने तरवार से उसके कान में छेद करके छोड़ दिया।

यहां तक पढ़ कर उसमान ने बिमला से पूछा 'तुम्हारा कभी और भी कोई नाम था?'

बिमला ने कहा हां था पर वह मुसलमानी नाम था इस-लिये पिताने दूसरा नाम रक्खा।

'वह नाम क्या था? माहरू!'

बिमला ने विस्मित होकर कहा 'आप कैसे जानते हैं?'

उसमान ने कहा 'मैं वही बालक हूं जिसको चोर लिये जाता था।'

बिमला को बड़ा आश्चर्य हुआ उसमान फिर पत्र पढ़ने लगे।

दूसरे दिन जाते समय पठान ने माता से कहा 'तुम्हारी कन्या ने जैसा मेरा उपकार किया है उसके प्रति उपकार करने की हम को सामर्थ नहीं है। परन्तु तुमको यदि कोई

वस्तु चाहती हो तो मुझ से कहो मैं दिल्ली जाता हूं वहां से भेज दूंगा यदि द्रव्य चाहिये तो वह भी भेज सक्ता हूं।

माता ने कहा 'मुझको धन नहीं चाहिये । मेरी मजूरी मुझको अच्छी है । किन्तु यदि आपकी पहुंच जहांपनाह तक हो तो—'

बात पूरी नहीं होने पाई कि पठान ने कहा 'हां ठीक है मैं राजदरबार में तुम्हारा काम कर सक्ता हूं'।

माता ने कहा 'तो वहां इस कन्या के बाप का पता लगा॰ कर मुझको लिख भेजियेगा'।

पठान ने हुंकारी भरी और एक 'अशरफी निकाल कर माता के हाथ धरी और उसने ले लिया। अपने कहने के अनुसार उसने वहां जाकर पिता की खोज में बहुतेरे राजपूत भेजे पर कहीं पता न लगा।

चौदह वर्ष के अनन्तर राजपूतों ने लिखा कि पिता दिल्ली में हैं शशिशेखर नाम छोड़ कर अभिराम स्वामि नाम रक्खा है। जब यह सम्बाद आया माता मेरी मर चुकी थी।

यह सम्बाद सुन कर फिर मुझ से काशी में न रहा गया। कुल भर में मेरे केवल पिता जीते थे और सो भी दिल्ली में, तो मैं काशी में क्या करती। अतएव मैं अकेली पिता के पास चली गई। पिता मुझको देखकर पहिले रूखे हुए परन्तु जब मैं बहुत रोई गाई तब मुझको दासी हो के रहने की आज्ञा दी और माहरू नाम छोड़ विमला नाम रक्खा। मैं पिता के घर में रह कर रात दिन उनकी सेवा में लगी रहती थी और जिस प्रकार वह प्रसन्न रहते वही काम करती थी। पिता भी मेरी सेवा देख कर स्नेह करने लगे।

सातवां परिच्छेद ।

बिमला के पत्र की पूर्ति ।

'मैं कहचुकी हूं कि मान्दारणगढ़ के एक नीच स्त्री को मेरे पिता से गर्भ रह गया और उसको एक कन्या उत्पन्न हुई थोड़े ही दिनों में वह भी बिधवा हो गयी और मेहनत मजूरी करके अपना और कन्या का पालन करती थी। इस कन्या के समान मान्दारणगढ़ में दूसरी रूपवती स्त्री न थी। काल पा कर उसका कलंक भी दूर होगया, जारजा का नाम भी मिट गया और उसके उदर में तिलोत्तमा का उद्भव हुआ।

वह जिस समय पेट में थी मेरे मनमें उसके विवाह के कारण चिन्ता उत्पन्न हुई। उसी समय एक दिन पिता अपने जामाता को साथ लेकर आए और मुझको पहिचनवा दिया उसी दिन से मैं उनको जानने लगी।

जब से मैंने प्राणेश्वर को देखा उसी दिन से परवश हो गयी वे प्रतिदिन पिता के समीप आया जाया करते थे और बैठते भी थे और बातचीत करते थे। मैं चुपचाप उनकी बातें सुना करती थी और मनसा वाचा से अपने को उनकी दासी समझी, वे भी मुझसे घृणा नहीं करते थे। अर्थात् दोनो ओर से आकर्षण होने लगा और मैं उनसे बोली। उन्होंने भी जो बात मेरे कान में कही वह मुझको आज पर्यन्त स्मरण है।

विना मूल्य उनके हाथ बिक गयी, किन्तु माता की दुर्दशा मुझको भूलती न थी और मैंने अपना धर्म्म नहीं डगाया, पर इससे उनका प्रेम कुछ कम नहीं हुआ। पिता को भी यह बातें ज्ञात हुईं। एक दिन दोनों बात कर रहे थे मैंने एक शब्द सुना।

पिता ने कहा 'मैं विमला को छोड़ नहीं सक्ता' किन्तु

यदि वह तुम्हारी पत्नी हो तो मुझको अंगीकार है पर जो तुम्हारे मन में यह बात न हो—'

पिता की बात पूरी न नहीं होने पाई कि 'उन्ने' रोष करके कहा ' शूद्री कन्या को मैं कैसे विवाह सक्ता हूं ? '

पिता ने कहा 'जारजा कन्या से कैसे विवाह किया था ?

प्राण प्रीतम ने कहा ,उस समय मैं इसबात को नहीं जानता था जान बूझ कर कोई शूद्री की कन्या विवाह करता है ? और आपकी पुत्री जारजा भी हो तो शूद्री नहीं हो सक्ती । '

पिताने कहा ' तुमने विवाह अस्वीकृत किया तो बहुत अच्छा तुम्हारे आने जाने से विमला को दुःख होता है अतएव अब यहां तुम्हारे आने का कुछ प्रयोजन नहीं । हमीं तुम्हारे घर पर आया करेंगे । '

उस दिन से उन्होंने आना जाना बन्द कर दिया । किन्तु मैं चातकी की भांति उनकी राह देखा करती थी उनसे भी न रहा गया और फिर आने जाने लगे । विरह ने प्रीति का रस चखा दिया और द्वितीय बार दर्शन होने से मेरा कुछ संकोच भी जाता रहा । पिता ने भी देखा और एक दिन मुझको बुला कर कहा, मैंने उदासी धर्म ग्रहण किया है और कुछ दिन देशाटन करूंगा तब तक तुम कहां रहोगी ? '

मैं यह सुन कर रोने लगी और बोली मैं ' तुम्हारे सङ्ग चलूंगी ' फिर जो प्राणेश्वर का ध्यान आ गया तो कहा ' नहीं तो जैसे काशी में अकेली रही थी उसी प्रकार अब भी रहूंगी । '

पिताने कहा ' नहीं मैंने एक उत्तम उपाय सोचा है जब तक मैं बाहर रहूं तब तक तुम महाराज मानसिंह की नवोढ़ा स्त्री के साथ रहना । '

मैं तुरन्त बोल उठी ' मैं तुम्हारे ही पास रहूंगी ' पिता ने

कहा ' नहीं मैं कहीं न जाऊंगा तुम मानसिंह के घर जाओ। मैं यहीं रहूंगा और नित्य तुमको देख आया करूंगा। जब मैं देख लूंगा कि तुम वहां कैसे रहती हो फिर वैसा प्रबन्ध करूंगा।'

हे युवराज! मैं उस दिन से तुम्हारे घर में रहने लगी और अपने प्राण प्रीतम से विलग हुई।

राजकुमार! मैं बहुत दिनों तक तुम्हारे पिता के घर में रही किन्तु तुम मुझ को नहीं चीन्हते। तब तुम्हारा वय केवल दश वर्ष का था और अपनी माता के साथ खेला करते थे। मैं तुम्हारी नवोढा माता के संग दिल्ली में रहती थी। महाराज मानसिंह के पास स्त्रियां अनेक थीं तुम सब को थोड़ी पहिचानते हो। योधपुर की उर्मिला तुमको स्मरण होगी उसके गुण का मैं तुम से क्या वर्णन करूं। वह मुझको दासी करके नहीं मानती थी वरन भगिनी के तुल्य जानती थी। उसने मुझको अनेक विद्या सिखायी। उसीके अनुग्रह से मैंने शिल्प विद्या सीखी और नाच गाना भी मैंने उसी के चित्त विनोद के निमित्त सीखा। यह पत्र उन्हीं देवी के अनुग्रह का फल है।

उसकी कृपा से और भी अनेक लाभ हुए। उसने मुझको महाराज तक पहुंचाया और वे मेरा नाच गाना देख सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और मुझको अपनी करके समझने लगे। वे मेरे पिता को भी मानते थे और कभी कभी मेरे देखने को आया करते थे। उरमिला के समीप रहकर मैंने बड़ा सुख भोगा किन्तु एक दुःख था कि जिसके लिये सर्वस्व त्याग करने को प्रस्तुत थी वह मन मोहन नहीं मिला। वे क्या मुझको भूल गए? कदापि नहीं। युवराज! आसमानी नाम चेरी को क्या आप पहिचानते होंगे उनके

सङ्ग मेरी बड़ी प्रीत थी मैंने उसको प्रीतम का समाचार लेने को भेजा । उसने उनका पता लगाया उन्होंने अनेक प्रकार की बातें कहीं । उसके उत्तर में मैंने उनको पत्र लिखा । उन्होंने उसका प्रति उत्तर दिया और इसी प्रकार हमारे उनके पत्र व्यवहार होने लगा ।

इस रीति से तीन वर्ष बीत गया और परस्पर विस्मरण नहीं हुआ तब मुझको प्रतीत हुई कि यह प्रीत कच्ची नहीं है । इसका कारण क्या था मैं नहीं कह सकी । एक दिन रात्रि को मैं अकेली अपने शयनागार में सोई थी और दीप मन्द ज्योति से जल रहा था कि एक मनुष्य की परछांई देख पड़ी और किसी ने मेरे कान में धीरे से कहा 'प्यारी डरो मत मैं तुम्हारा दास हूं ।'

मैं क्या उत्तर देती ? तीन वर्ष पर भेंट हुई सब बातें खुल गईं गले लग कर रोने लगी ।

फिर मैंने पूछा 'तुम कैसे इस पुरी में पहुंचे ?' उन्होंने कहा 'आसमानी से पूछो, उसको साथ लेकर पवन के रथ पर चढ़कर आया हूं इसी लिये अभी तक छिपा था ।'

मैंने पूछा 'अब ?'

उन्होंने कहा 'अब क्या ? तुम चाहो सो करो ।'

मैं सोचने लगी कि अब क्या करूं कहां रक्खूं ? इतने में किसी ने मेरे शयनागार का द्वार खोला । देखूं तो महाराज मानसिंह आगे खड़े हैं । और क्या कहूं प्रीतम बन्दी कर लिये गए और दण्ड देने की भी आज्ञा हुई । मैं जाकर उर्मिला के चरण पर गिर पड़ी और सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया । पिता से जब भेंट हुई उनके भी पैर पर गिर पड़ी । महाराज उनको मानते थे और गुरू के तुल्य समझते थे मैंने उन से कहा

' आप अपनी ज्येष्ठ कन्या का स्मरण करें। ' पर उन्होंने मेरी बात न सुनी जान पड़ता था कि महाराज की और उनकी एक मति थी। वरन रोष करके बोले ' पापिन ! तू ने लज्जा संकोच सब छोड़ दिया ' उर्मिला देवी ने मेरी रक्षा के निमित्त महाराज से बहुत कुछ कहा। महाराज बोले ' मैं इस चोर को छोड़ दूंगा यदि वह विमला से विवाह करले। '

मैं महाराज की मनोगति समझ चुप रही किन्तु प्राणेश्वर ने जब यह बात सुनी कहने लगे ' मैं बन्दी रहूंगा प्राणदण्ड भोगूंगा परन्तु शूद्री कन्या का अंगीकार कदापि न करूंगा। आप हिन्दू होकर ऐसा बात कहते हैं। '

महाराज ने कहा ' जब मैंने अपनी बहिन शाहज़ादा सलीम के सङ्ग ब्याह दी तो तुमको ब्राह्मण की कन्या ब्याहने कहता हूं इसमें क्या आश्चर्य ? '

पर उनके मन में न समाई। उन्होंने कहा ' महाराज जो होना था सो हो चुका अब आप कृपा करके मुझको बन्धन मुक्त कीजिये मैं अब विमला का नाम भी न लूंगा। '

महाराज ने कहा ' ऐसे तो तुम्हारे अपराध का प्रायश्चित नहीं होता। तुम विमला को त्याग दोगे तो दूसरा उसको कलंकिनी समझ कर ग्रहण नहीं करेगा।

अन्त को जब उनसे कारागार की कठिनता न सही गयी तो कुछ २ ढुले और बोले ' विमला यदि हमारे घर में दासी होकर रहे और इस विवाह के विषय में कभी किसी से कुछ न कहे तो मैं उससे विवाह करलूं नहीं तो न करूंगा। '

लगी बुरी होती है मैंने वही स्वीकार किया। मुझको धन सम्पत्ति और मान की लालसा न थी मैं तो केवल प्रीतम की अभिलाषी थी। पिता और महाराज की भी सम्मति हुई और मैं

दासी का वेष धारण करके अपने भर्ता के गृह गईं।

उन्होंने मुझको अपनी इच्छा के विरुद्ध पेंच में पड़ कर ग्रहण किया था, अतएव मुझको वैरी की भांति समझते थे। पूर्वकालीन प्रेम सब मिट्टी में मिल गया और महाराज मानसिंह कृत अपमान का टोकारा देकर मुझको निन्दित किया करते थे। मैं उसी में मगन थी। कुछ दिन के अनन्तर फिर मेरा सौभाग्य चमका और प्राणेश्वर मुझको चाहने लगे किंतु महाराज की ओर उनका वैसाही ध्यान रहा। विधना की करतूति! नहीं तो क्यों इस दशा को पहुंचते।

मैं तो अपना वृत्तान्त कह चुकी। बहुत लोग जानते होंगे कि मैं अपना कुल धर्म्म परित्याग कर मान्दारणगढ़ के स्वामी के पास रहती थी इसलिये मैंने आपको लिख भेजा है कि अब मैं मर जाऊं और लोग मुझको कलंक लगावें उस समय आप मेरी सहायता कीजियेगा।

इस पत्र में मैंने केवल अपना हाल लिखा है, जिसके संवाद जानने की आपको अनेक दिन से लालसा लग रही है उसका इसमें कुछ परिलेख नहीं है, आप उस नाम को अपने मन से भूल जाइये। तिलोत्तमा का अब ध्यान छोड़ दीजिये।

उसमान ने पत्र पढ़ कर कहा "माता तुम ने मेरी प्राण रक्षा की है अब मैं उसका प्रतिउपकार करूंगा"।

विमला ने ठंढी सांस लेकर कहा 'हमारा क्या उपकार आप कीजियेगा? और उपकार'—

उसमान ने कहा "मैं वही करूंगा।"

विमला का बदन चमकने लगा और बोली "उसमान तुम क्या कहते हो? इस दग्धहृदय को अब ललचाते हो?"

उसमान ने हाथ से एक अँगूठी उतार कर कहा, यह अँगूठी

लो दो एक दिन तो कुछ नहीं हो सकता। कतलू खां की वर्ष गांठ समीप है उस दिन बड़ा उत्सव होगा। पहरे वाले मारे आनन्द के उन्मत्त हो जाते हैं। उसी दिन में तुम को मुक्त करूंगा तुम उस दिन रात को महल के द्वार पर आना यदि वहां कोई तुमको ऐसी हो दुसरी अंगूठी दिखावे तो तुम उसके सङ्ग हो लेना। आशा है कि निर्विघ्न निकल जाओगी' आगे हरि इच्छा बलवान है।

बिमला ने कहा परमेश्वर तुमको चिरंजीव रक्खें, और मै क्या कहूं, और उसका हृदय भर आया और मुंह से बोली नहीं निकली। आशीर्वाद देकर जब बिमला जाने लगी उसमान ने कहा "एक बात तुम से बता दें अकेली आना। यदि कोई तुम्हारे सङ्ग होगा तो काम न होगा। वरन उपद्रव का भय है।"

बिमला समझ गई कि उसमान तिलोत्तमा को सङ्ग लाने का निषेध करता है और अपने मन में सोचा कि यदि दो जन नहीं जा सकते तो अच्छी बात है तिलोत्तमा अकेली जायगी।

बिमला बिदा हुई॥

आठवां परिच्छेद।

आरोग्य।

सदा किसी का दिन बराबर नहीं रहता। किसी को सुख किसी को दुःख यह परम्परा से चला आया है।

समय एकसा नहीं रहता। क्रमशः जगतसिंह आरोग्य होने लगे। यमराज के ग्रास से बच कर दिन २ शक्ति बढ़ने लगी, ग्लानि दूर हुई और क्षुधा लगने लगी जब भोजन किया बल हुआ और उसी के सङ्ग चिन्ता का भी प्रादुर्भाव हुआ।

पहिले तिलोत्तमा की चिन्ता से मन ग्रसित हुआ । सब से पूछते थे पर किसी ने तुष्टिजनक उत्तर नहीं दिया । आयेशा जानतीही न थी, उसमान बोलताही नहीं था और दास दासी बेचारे क्या जाने । राजकुमार को चैन नहीं मिलता था ।

दूसरी चिन्ता होनहार के विषय में थी । अब क्या होगा ? यद्यपि सुन्दर सुगन्धमय आगार में शय्या के ऊपर चैन से पड़े रहते थे, दास दासी सेवा में नियुक्त थे, जिस वस्तु की इच्छा होती थी तुरन्त मिलती थी, आयेशा दिन रात भाई की भांति सेवा करती थी पर द्वार पर पहरा खड़ा था । इस पिञ्जरे से कब छूटेंगे ? छूटेंगे कि नहीं ? सेनागण क्या हुए ? सेनापति शून्य वे क्या करते होंगे ?

तीसरी चिन्ता आयेशा । यह परहितकारी मनमोहनी कौन है ? कहां से आई ? न तो वह विश्राम करती थी और न हारती थी अहर्निश रोगी की शुश्रूषा में रहती थी । जब तक राजकुमार निरोग नहीं हुए वह नित्य प्रातःकाल आकर इनके सिरहने बैठ कर यथावत् यत्न करती थी और जब तक कोई आवश्यक कर्म नहीं होता था उठती न थी ।

जबतक जगतसिंह भली भांति अच्छे नहीं हुए तबतक आयेशा इसी प्रकार उनकी सेवा में लगी रहती थी ज्यों २ वे अच्छे होने लगे त्यों २ वह भी अपना आना जाना कम करने लगी ।

एक दिन दो पहर ढले जगतसिंह अपनी कोठरी में खिड़-की के समीप खड़े बाहर का कौतुक देख रहे थे । मनुष्यगण स्वेच्छापूर्वक आते जाते थे । अपनी अवस्था उनसे मन्द देख राजकुमार को बड़ा दुःख हुआ । एक स्थान पर कई मनुष्य
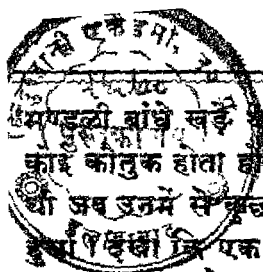
मण्डली बांधे खड़े हैं युवराज ने मन में अनुमान किया कि कोई कौतुक होता होगा परन्तु बीच की वस्तु नहीं देख पड़ती थी जब उनमें से कुछ लोग चले गए राजपुत्र का संशय दूर हुआ। देखा कि एक मनुष्य हाथ में कुछ पत्रे लिये लोगों को कुछ सुना रहा है। उसी समय युवराज की कोठरी में उसमान का प्रवेश हुआ।

उसमान ने पूछा " आप क्या देखते हैं ?'

राजपुत्र ने कहा ' कटहरे में से देखो।'

उसमान ने देख कर कहा ' क्या आपने इसको कभी देखा नहीं ?'

राजकुमार ने उत्तर दिया ' नहीं '।

उसमान ने कहा वह तो आपका ब्राह्मण है, कथा, वार्ता करने में बड़ा चतुर है, उसको मान्दारणगढ़ में मैंने देखा था।

राजकुमार मन में चिन्ता करने लगे कि यदि वह मान्दारणगढ़ रहा है तो क्या तिलोत्तमा के विषय में कुछ न जानता होगा ? बोले 'महाशय इसका नाम क्या है ?'

उसमान ने सोच कर कहा उसका नाम कुछ कठिन है। शीघ्र स्मरण नहीं होता, गनपत ? न — गनपत कि जगपत, ऐसाही कुछ नाम है।

" जगपत " नाम तो इस देश में नहीं होता और वह तो बंगाली है।

हां बंगाली तो है, भट्टाचार्य्य इसकी एक अल्ल भी है, इलम या क्या ?

बंगालियों के अल्ल में 'इलम' शब्द नहीं होता। यह तो फ़ारसी शब्द है, इलम को बँगला में विद्या कहते हैं।

हां हां विद्या ठीक है। बंगला में हाथी को क्या कहते हैं ?

" हस्ती "

और ।

करी, दन्ती, वारण, नाग, गज ।

हां हां ठीक है, इसका नाम गजपतिविद्या दिग्गज है ।

विद्यादिग्गज ! वाह ! बड़ी भारी अक्ल है । जैसा नाम वैसाही उपनाम । इसके संग बात करने को जी चाहता है ।

उसमान ने उसकी बातें सुनी थीं, मन में सोचा कि इसके संग बात करने में कुछ हानि नहीं बोले ' चिन्ता नहीं ' दोनों ने बरामदे में जाकर एक भृत्य द्वारा उसको बुलवाया ॥

नवां परिच्छेद ।

दिग्गज सम्वाद ।

नौकरों के संग विद्यादिग्गज आए जगतसिंह ने पूछा आप ब्राह्मण हैं ?

दिग्गज ने हाथ जोड़ कर कहा ।

यावन्मेरौ स्थितादेवा यावद्गङ्गा महीतले ।

असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमन्दिरं' ।

जगतसिंह ने मुसकिरा कर प्रणाम किया और ब्राह्मण ने आशीर्वाद दिया ' खोदा खां बाबूजी को अच्छी तरह रक्खे' ।

राजपुत्र ने कहा महाराज ! ' मैं मुसलमान नहीं हूं मैं तो हिन्दू हूं ।'

दिग्गज ने मन में कहा ' मुसलमान हम को धोखा देते है या इनका कुछ काम होगा नहीं तो काहे को बुलाते ' विपन्न बदन होकर बोले, खां बाबूजी मैं आपको चीन्हता हूं, मैं आपके चरणों का दास हूँ, मुझसे कुछ न कहिये

जगतसिंह ने देखा कि यह आपत्ति है बोले, महाराज आप ब्राह्मण हैं मैं राजपूत हूं आपको ऐसा कहना उचित नहीं। आपका नाम गजपतिविद्यादिग्गज है?

दिग्गज ने कहा, हाय! नाम पूछता है! न जाने क्या विपद् पड़े? और हाथ जोड़ कर बोला। 'दोहाई शेखजी की! मैं गरीब हूं, आप के पैरों पड़ता हूं।'

जब जगतसिंह ने देखा कि ब्राह्मण इतना डरा है कि उससे कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता तो बात टाल दूसरा विषय छेड़ बोले—'आपके हाथ में कौन पोथी है'?

'यह माणिकपीर की पोथी है।'

'ब्राह्मण के हाथ में माणिकपीर की पोथी।'

'जी–जी हां, मैं पहिले ब्राह्मण था अब तो ब्राह्मण नहीं हूं।'

राजकुमार बड़े विस्मयापन्न हुए और बोले 'यह बात क्या? आप मान्दारणगढ़ में नहीं रहते थे?'

दिग्गज ने सोचा अब बहुत बिगड़ी! मेरे बीरेन्द्रसिंह के दुर्ग में रहने का पता लग गया, जो दशा उनकी हुई वही मेरी भी होगी और मारे डर के कांपने लगा।

राजकुमार ने कहा, 'हैं क्या हुआ?'

दिग्गज ने हाथ जोड़ कर कहा 'दोहाई खां बाबा की, बाबा मुझको मारो मत, बाबा मैं तुम्हारा गुलाम हूं।'

'तुम क्या उन्मत्त होगए?'

'नहीं बाबा मैं आपका दास हूं, मैं सेवक हूं, मैं तो आपही का हूं।'

जगतसिंह ने ब्राह्मण को स्थिर करने के लिये कहा 'तुम कुछ चिन्ता न करो, तनिक अपनी माणिकपीर की पोथी तो पढ़ो मैं सुनूंगा।'

ब्राह्मण पोथी खोल सुरसे पढ़ने लगा ।

थोड़े देर के अनन्तर राजकुमार ने फिर पूछा 'आप ब्राह्मण होकर माणिकपीर की पोथी क्यों पढ़ते थे ?'

उसने सुर रोक कर कहा, मैं मुसलमान हो गया ।

राजपुत्र ने कहा 'यह था ?' गजपति ने कहा जब मुसलमान लोग गढ़ में आए मुझसे बोले 'अरे बम्हन तेरी जाति का नाश करूंगा' और हमको पकड़कर ले गए और बांध कर मुर्गी का पोलाव खिला दिया ।

'पोलाव क्या ?'

दिग्गज ने कहा 'गरम चावल घी में पका हुआ'

राजपुत्र समझ गए और बोले 'हां फिर ?'

दिग्गज ने कहा फिर हमको कलमा पढ़ाया--

'कलमा'

फिर हमसे बोले 'अब तू मुसलमान हो गया' तबसे मैं मुसलमान हूं ।

राजाकुमार ने अवसर पाय पूछा 'औरों की क्या दशा हुई ?' और और सब ब्राह्मण ऐसेही मुसलमान होगए ?'

राजपुत्र ने उसमान का मुंह देखा उसने उनके तिरस्कार को समझ कर कहा 'इसमे दोष क्या ! मुसलमानों के लेखे उन्हीं का धर्म सच है । बल हो अथवा छल से हो सत्य धर्म के प्रचार में पाप नहीं, पुण्य होता है' ।

राजपुत्र ने उत्तर नहीं दिया और विद्यादिग्गज से पूछने लगे 'विद्यादिग्गज महाशय !'

'जी अब शेख दिग्गज कहिये ।'

अच्छा शेखजी गढ़ के और किसी का समाचार आप नहीं जानते ?

उसमान राजपुत्र का आशय समझ घबराया दिग्गज ने कहा 'और अभिराम स्वामी भाग गए'।

राजपुत्र ने सोचा कि इस अज्ञ से स्पष्ट पूछने बिना कुछ न जान पड़ेगा। बोले 'वीरेन्द्रसिंह क्या हुए'।

ब्राह्मण ने कहा 'नवाब कतलू खां ने उनको कटवा डाला।'

राजकुमार का मुंह लाल हो आया। उसमान से पूछा 'यह क्या? क्या यह झूठ कहता है?'

उसमान ने धीरचित्त से कहा 'नवाब ने विचार करके राजद्रोही समझ उनको प्राणदण्ड दिया।

राजपुत्र की आंखों में रोष भर आया। उसमान से पूछा 'क्या यह काम तुम्हारी सम्मति से हुआ है?'

उसमान ने कहा 'हमारी मति के विरुद्ध।'

कुछ काल युवराज चुप रहे उसमान ने समय पाय दिग्गज से कहा अब तुम जाओ।

वह उठ कर चला कि कुमार ने उसका हाथ पकड़ कर निषेध किया और कहा कि एक बात और पूछता हूं विमला क्या हुई?

ब्राह्मण ने ठंढी सांस ली और रो कर कहा 'वह अब नवाब की उपपत्नी हुई है'। राजकुमार ने कराल नेत्र से उसमान की ओर देख कर कहा 'यह भी सच है?'

उसमान ने कुछ उत्तर न देकर ब्राह्मण से कहा 'तुम अब क्या करते हो? जाओ।'

राजकुमार ने ब्राह्मण का हाथ दृढ़ता पूर्वक पकड़ा जिसमें जा न सके और बोले 'थोड़ा और ठहरो एक बात और है' उनके रक्तवर्ण आंखों से आग बरसने लगी, 'और एक बात है, तिलोत्तमा?'

ब्राह्मण ने उत्तर दिया 'वह भी नवाब की उपपत्नी बनी दासी संयुक्त चैन करती है' ।

राजकुमार ने तुरन्त ब्राह्मण का हाथ छोड़ दिया और वह गिरते २ बचा ।

उसमान ने सकुच कर धीरे से कहा 'मैं केवल सेनापति हूं' राजपुत्र ने कहा 'तुम पिशाचों के सेनापति हो' ।

दसवां परिच्छेद ।

प्रतिमा बिसर्जन ।

जगतसिंह को उस रात नींद नहीं आई । चिन्ता ग्रीष्मकालीन उत्तप्तभूमि के समान शरीर का दाह करती थी । जिस तिलोत्तमा के मरण पश्चात् राजपुत्र पृथ्वी को शून्य समझते वह तिलोत्तमा अद्य पर्यन्त जीती है यह दुःख उनके मन में उत्पन्न हुआ ।

यह क्या ? तिलोत्तमा ने प्राण त्याग नहीं किया क्यों ? वह प्राणेश्वरी जिसके देखने से मन प्रसन्न होता था अभी जीती है ? जिस समय राजकुमार इस प्रकार चिन्ता करते थे उनकी आंखों से आंसू चले जाते थे । फेर दुराचारी कतलू खां के बिहारमन्दिर का ध्यान हुआ । वही शरीर अब यवन अंकाभरण होगा ।

हमारे हृदयमन्दिर की शोभादायनी मूर्ति पठान के भवन में है ? हा ! तिलोत्तमा कतलू खां की उपपत्नी हुई ?

अब क्या वह फिर कभी राजपूत का स्मरण करती होगी ? अपने हस्तच्युत प्रतिमा का पुनर्ग्रहण राजपूतों का कर्म नहीं है । हा ! आज उस मूर्ति का ध्यान करके हृदय विदीर्ण होता है

वह त्रिभुवनमोहिनी मूर्ति कैसे भूलेगा ? अब तो जब तक जीव है इस मल मूत्र अस्थि मांस संयुक्त शरीर को वहन करनाही पड़ेगा और तब तक उस जीवेश्वरी का ध्यान भी न छूटेगा ।

इस प्रकार (कारुणिक उत्कट चिन्ता करते २ राजपुत्र की स्थिरता और बुद्धि मन्द होने लगी और स्मरण शक्ति भी घटने लगी) सारी रात सिर में हाथ लगाये बैठे थे । घुमरी आने लगा और आंख खोलने की इच्छा नहीं होती थी ।

एक अवस्था में देर तक रहने से शरीर में वेदना होने लगी और ज्वर सा चढ़ आया । खिड़की के पास जा कर खड़े हुए ।

शीतल वायु मस्तक में लगी । अंधेरी रात बदली छायी हुई थी तारागण मन्द २ चमकते थे और दूर के वृक्ष अन्धकार के कारण एक में मिले हुए देख पड़ते थे निकटस्थ वृक्षों पर जुगनू चमक रहे थे और सम्मुखस्थ तड़ाग में पार्श्ववर्ती लता वृक्ष की छाया स्पष्ट देख पड़ती थी ।

मन्दसमीर के स्पर्श से शरीर शीतल हुआ खिड़की पर दोनों हाथ रखकर मस्तक नवाकर खड़े हुए । बहुत देर तक नींद तो आयी न थी कुछ मूर्छा आ चली कि फिर वही ध्यान आ गया । आशा छोड़ने में बड़ा क्लेश होता है । अस्त्राघात से बड़ा दुःख होता है किन्तु उससे जो घाव होता है उसमें उतना क्लेश नहीं होता, वह तो स्थायी न हो जाता है । वही दशा राजकुमार की हुई । अंधकारमय उडुगण हीन आकाश की ओर देखने लगे । उसका प्रतिबिम्ब अपने हृदय में देख सोचने लगे प्राचीन बातें सब स्मरण होने लगीं, बाल्यावस्था, युवामद सब का ध्यान हुआ और क्रमशः अन्यमन होने लगे । शरीर की शीतलता और बढ़ने लगी और कुछ नींद भी आने लगी ।

उस अवस्था में स्वप्न हुआ मुंह का रंग पलटने लगा ओठ कांपने लगे और ललाट में पसीना हो आया और हाथों की मुट्ठी बंध गई।

एकाएक चमक उठे और इधर उधर टहलने लगे। यह यन्त्रणा कब तक रही मालूम नहीं। जब प्रातःकाल सूर्य के किर्ण से चतुर्दिक प्रकाश हुआ उस समय जगतसिंह भूमि पर बिना बिछौना पड़े सो रहे थे।

उसमान ने आकर उनको उठाया। जब वे उठे उसमान ने उनके हाथ में एक पत्र दिया। पत्र हाथ में ले राजकुमार चुप चाप उनका मुंह देखने लगे। उसमान ने समझा राजकुमार इस समय सोच में हैं अतएव इनसे किसी प्रयोजन की बात चीत अभी नहीं होसकी, बोला।

राजकुमार! मुझ को आप के भू शयन का कारण पूछने की विशेष आकांक्षा नहीं है पर जिसने यह पत्र दिया है उसको मैं बचन दे आया हूं कि यह पत्र आपही के हाथ में दूंगा अभी तक मैंने आपको नहीं दिया था उसका एक कारण था अब वह दूर हुआ आप सब बातें जान गए। इससे पत्र आप के पास छोड़ कर जाता हूं आप अपने अवकाश में इसे पढ़ियेगा कल मैं फिर आऊंगा। यदि उत्तर देना चाहियेगा तो मैं भेज दूंगा। और पत्र रखकर उसमान चला गया।

राजकुमार ने अकेले बैठ पत्र को आद्योपान्त पढ़ा फिर उसको मेज़ पर धर के फूंक दिया और जब तक वह जल कर भस्म नहीं हो गया उसी की ओर देखते रहे। जब उसका कोई चिन्ह न रहा तो अपने मन में कहने लगे 'स्मारक चिन्ह तो आग में जला कर नाश करडाला पर स्मृति को क्या करूं वह अभी तक बेदना दे रही है'।

रीति के अनुसार नित्यक्रिया के अनन्तर पूजादि कर इष्ट-देव को प्रणाम किया फिर हाथ जोड़कर आकाश की ओर देख बोले ' गुरुदेव ! मेरी सुध रखना मैं राजधर्म पालन करूंगा, क्षत्री कुलोचित कर्म करूंगा ! अपने चरणों का प्रसाद मुझको दीजिये । दुराचारी के उपपत्नी का ध्यान इस चित्त से दूर कीजिये जिस में शरीर त्याग करने पर आप के समीप पहुंचूं मनुष्य को उचित है सो मैं करता हूं । आप अन्तर-यामी हैं मेरे अन्तःकरण में दृष्टि करके देखिये अब मैं तिलो-त्तमा के प्रणय की इच्छा नहीं रखता । अब उसके दर्शन की लालसा नहीं रखता केवल भूतपूर्व स्मृति अहर्निशि हृदय को जलाती है । आज अभिलाषा त्याग किया । क्या याद न भूलेगी ? गुरुदेव चरण कमल का प्रसाद मुझ को दीजिये नहीं तो यह स्मृति दुःख सहा नहीं जाता ।

प्रतिमा का विसर्जन हुआ ।

तिलोत्तमा ने भूमि में पड़ी स्वप्न देखा है कि निगिड़ अन्ध-कार में वह एक तारे की ओर देख रही है किन्तु उसने अपनी ज्योति खींच ली इस घोर आंधी में जिस लता से अपना प्राण बांधा था वह टूट गयी, जिस नौका पर चढ़कर समुद्र पार जाने की आशा थी वह नौका डूब गयी ॥

ग्यारहवां परिच्छेद ।

गृहान्तर ।

अपने कहने के अनुसार दूसरे दिन उसमान आकर राजपुत्र के सामने उपस्थित हुआ और बोला ।

' युवराज । पत्र का उत्तर भेजियेगा ? '

उन्होंने उसका उत्तर पहिले मे लिख रक्खा था उठा कर उसमान को दिया । उसमान ने पत्र हाथ में लेकर कहा ' अपराध क्षमा हो, हम लोगों की रीति है कि जब कोई दुर्गवासी किसी को पत्र लिखता है रक्षक उसको पढ़ लेते हैं तब भेजते हैं' ।

युवराज ने कुछ उदास होकर कहा ' यह कहना व्यर्थ है । तुम पत्र खोलकर पढ़ लो इच्छा होय भेजना वा न भेजना ।'

उसमान ने खोल कर पढ़ा उसमें यही लिखा था ।

अभागिन ? मैं तेरी बात न भूलूंगा किन्तु यदि तू पतिव्रता है तो जहां तेरा पति गया वहां तू भी चली जा और अपने कलंक को दूर कर उसमान ने पढ़ कर कहा । ' राजपुत्र आप का हृदय बड़ा कठोर है ।'

राजपुत्र ने उत्तर दिया 'पठानों से विशेष नहीं ।'

उसमान का मुंह लाल होगया और कुछ कर्कश होकर बोला 'मैं जानता हूं कि पठानों ने आप से इतनी अभद्रता न की होगी ।'

राजपुत्र को कोप भी हुआ और लज्जा भी लगी । बोले 'नहीं जी मैं अपनी बात नहीं कहता हूं तुमने मेरे ऊपर तो बड़ी दया की है, बन्दी करके भी प्राणदान दिया जिस को कारागार में बेड़ी डाल कर रखना चाहिये उसको ऐसे चैन से रक्खा और क्या कीजियेगा ? किन्तु मैं कहता हूं, मैं तो आप की भद्रता के जाल में फसा हूं । इस सुख का परिणाम कुछ जान नहीं पड़ता यदि मैं बन्दी हूं और मुझको कारागार में रक्खा है तो कृपापूर्वक मुझको इस बंधन से छुड़ाइये और यदि बन्दी नहीं हूं तो फिर इस स्वर्ण पिंजरे की क्या आवश्यकता थी ?'

उसमान ने स्थिर चित्त होकर कहा 'राजपुत्र। आप इतना घबराते क्यों हैं दुख बुलाने से नहीं आता आप से आप आता है।

रापपुत्र ने गर्वित बचन से कहा 'आप लोगों की इस कुसुम शय्या की अपेक्षा राजपूत शिला शय्या को अमङ्गल नहीं समझते।

उसमान ने कहा 'और यदि अमङ्गलही होता तो क्या हानि थी'।

राजपुत्र ने उसमान की ओर तीखी दृष्टि करके कहा 'यदि कतलूखां को उचित दण्ड न दिया तो मरनेही में क्या हानि है' ?

उसमान ने कहा 'युवराज ! पठान लोग जो कहते हैं वही करते हैं।'

युवराज ने हंस कर कहा 'सेनापति तुम यदि हमको धमकाने आये हो तो यह श्रम तुम्हारा निष्फल है।'

उसमान ने कहा 'राजपुत्र हमलोग आपुस की परम्परा को भली भांति जानते हैं व्यर्थ वाक्यव्यय से कुछ प्रयोजन नहीं ! मैं आपके पास एक विशेष कार्य के निमित्त आया हूं।'

जगतसिंह को आश्चर्य हुआ और बोले 'क्या'।

उसमान ने कहा 'मैं जो आपसे प्रस्तावना करता हूं वह कतलूखां के कहने से नहीं करता'।

ज०। 'अच्छी बात है।'

उ०। सुनिये। राजपूत और पठानों के युद्ध में दोनों पक्ष की हानि है।

राजपूत ने कहा 'पठानों का नाश तो युद्ध का मुख्य प्रयोजन है'।

उसमान ने कहा 'सत्य है किन्तु यह कब सम्भव है कि एक की हानि हो और एक की न हो मान्दारणगढ़ के जीतने वाले कुछ बलहीन नहीं हैं ।

जगतसिंह ने कुछ मुसकिरा कर कहा 'वे तो बड़े कुशल हैं'

उसमान ने कहा 'जो हो आत्मश्लाघा हमारा काम नहीं है । रात दिन मोगलराज से विवाद करके पठानों का उड़िस्सा में रहना नहीं हो सक्ता । किन्तु वे उनके आधीन भी नहीं हो सके । आप मेरी बातों को और भांति न समझिये । आप तो राजनीति जानते हैं, देखिये दिल्ली से उड़िस्सा कितनी दूर है । दिल्लीश्वर ने जो मानसिंह के पराक्रम से पठानों पर इस बार जय पायी तो यह जयध्वजा कब तक खड़ी रहेगी ? महाराज मानसिंह सेना लेकर पलट जायंगे और उड़िस्सा से दिल्लीश्वर का राज भी लौट जायगा । पहले भी तो अकबर ने इस देश को जीता था किन्तु कितने दिन अपने आधीन रक्खा ? अब भी वैसाही होगा । बहुत होगा फिर सेना आवेगी और जय होगी, फिर पठान स्वाधीन हो जायंगे । वे बंगाली तो नहीं हैं जो आधीन हो जांय, फिर राजपूत और पठानों के रुधिर बहाने से क्या लाभ है ?'

जगतसिंह ने कहा 'तुम क्या चाहते हो ।

उसमान ने कहा मैं 'कुछ नहीं कहता । मेरे स्वामी सन्धि करना चाहते हैं ।'

ज० । 'कैसी सन्धि ?'

उ० । दोनों पक्षवालों को कुछ २ दबना चाहिये । नवाब कतलूखां ने अपने बाहुबल से बंग देश के जिस प्रदेश को जीता है वे उसको छोड़ देते हैं अकबरशाह भी उड़िस्सा छोड़ कर सेना लेकर चले जांय और फिर कभी आक्रमण न करें ।

इसमें बादशाह की कुछ हानि नहीं होती पर पठानों की होती है। हमलोगों ने क्लेश भोग कर जो पाया है उसे छोड़ देते है और अकबर को वह छोड़ना पड़ता है जो उन्होंने नहीं पाया है।

राजकुमार ने सुनकर कहा 'अच्छी बात है। कि तुम यह बातें हमसे क्यों कहते हो ? मेल और बिगाड़ करनेवाले महाराज मानसिंह हैं उनके पास दूत भेजो'।

उसमान ने कहा 'उनके पास दूत भेजा गया था पर किसी ने महाराज से कह दिया कि पठानों ने आप को मार-डाला। महाराज मारे क्रोध के सन्धि के नाम से घृणा करते हैं और दूत की बातों का विश्वास नहीं करते, यदि आप स्वयं जाकर सन्धि का प्रस्ताव करें तो वे मानेंगे'।

राजपुत्र ने फिर उसमान की ओर देख कर कहा 'इसका क्या अर्थ जो आप हमको जाने कहते हैं। हमारा हस्ताक्षर भेजने से महाराज को विश्वास हो सक्ता है।'

उ०। उसका यह कारण है कि महाराज मानसिंह हम-लोगों के समाचार को नहीं जानते। आपके द्वारा उनको हम-लोगों का वास्तविक बल समझ पड़ेगा, और विशेष करके आपकी बातों को वे पतिआयंगे भी। लिखने से यह बात नहीं हो सकती संधि का तुरन्त एक फल तो यह होगा कि आप कारागार से छूट जांयगे। नवाब कतलूखां को विश्वास है कि आप सन्धि का प्रबन्ध अवश्य करेंगे।

ज०। मैं पिता के पास जाने से मुंह नहीं मोड़ता।

उ०। यह बात सुनकर मुझको बड़ा आनन्द हुआ परंतु एक निवेदन और है। यदि आप इस प्रकार सन्धि का प्रबन्ध न कर सकें तो फिर आपको इस दुर्ग में पलट आना पड़ेगा।

ज०। मैं कह जाऊं और फिर न आऊं, तो इसका निश्चय कैसे होसक्ता है।

उसमान ने हंसकर कहा 'इस बात का निश्चय है। राजपूत लोग कहकर मुकरते नहीं यह सब लोग जानते हैं।'

राजपुत्र ने सन्तुष्ट होकर कहा 'मैं अंगीकार करता हूं कि पिता से मिलकर अकेला दुर्ग को पलट आऊंगा'।

उ०। और एक बात स्वीकार कीजिये तो हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह हो—कि महाराज के पास जाकर आप हमलोगों की इच्छानुसार सन्धि सम्पादन कीजिये।

राजपुत्र ने कहा 'सेनापति महाशय मैं यह बात स्वीकार नहीं कर सक्ता दिल्ली के अधिकारी ने हमको पठानों को जय करने के निमित भेजा था, मैं पठानों को पराजित करूंगा सन्धि नहीं करूंगा। मैं चरचा भी न करूंगा।'

उसमान को सन्तोष और क्षोभ दोनों हुआ। बोले 'युवराज आपने राजपूत कुल योग्य उत्तर दिया पर विचार कर देखिये कि दूसरा और कोई आपके छूटने का उपाय नहीं है।'

ज०। हमारे छूटने से दिल्लीश्वर को क्या? क्षत्रिय कुल में अनेक योधा हैं।

उसमान ने कातर होकर कहा 'राजकुमार! हमारा निवेदन सुनिये और इस हठ को छोड़ दीजिये'।

ज०। क्यों?

उ०। मैं आप से सत्य कहता हूँ कि नवाव साहेब ने आप को इतने आदर सत्कार से इसी आशा पर रक्खा है कि आप के द्वारा सन्धि का प्रबंध हो जायगा। यदि आपने मुंह मोड़ा तो अपनी हानि की।

ज०। फिर मुझको भय देखाते हो। इसी लिये मैंने कार

गार में रहने की प्रार्थना तुम से की थी ।

उ० । राजकुमार ! कतलूखां यदि आपको कारागारही में रखकर तृप्त हो तो बड़ी बात ।

युवराज ने भौं टेढ़ी करके कहा 'वीरेन्द्रसिंह की दशा मेरी भी होगी, और क्रोध के मारे आंखें लाल हो गयीं ।

उसमान ने कहा 'मैं जाता हूं । अपना काम म कर चुका कतलूखां की आज्ञा आपको दूसरे दूत द्वारा ज्ञात होगी ।

थोड़ी देर के अनन्तर वह दूत आया । उसका वेष सैनिक पुरुष की भांति था, पर साधारण सिपाहियों से कुछ बढ़कर बोध होता था । उसके सङ्ग और चार सिपाही थे । राजपुत्र ने पूछा । 'तुम क्यों आये' ?

सैनिक ने कहा 'आप को दूसरी कोठरी में चलना होगा'

'मैं प्रस्तुत हूं चलो' कहकर राजपुत्र दूतों के पीछे हो लिये ।

बारहवां परिच्छेद ।

अलौकिक आभरण ।

महा उत्सव उपस्थित । आज कतलूखां का जन्मदिन है दिन में सब लोग राग, रङ्ग, नृत्यगान भोजन पान, इत्यादि में नियुक्त थे और रात को इससे भी अधिक दुर्ग में दीपावली दान होने लगी, सैनिक, सिपाही, उमरा, नौकर, चाकर, घर रंक, मतवाले, नट, नर्तक, नायक, नायिका, बजनिया, मानमती माली, गन्धी, तमोली, हलवायी, ठठेरे, कसेरे इत्यादि से दुर्ग परिपूर्ण हो गया । जिधर देखो उधर दीपमाला, गाना बजाना, इतर, पान, पुष्प, बाजी, बेश्या देख पड़ते थे । महल में इससे

भी धूमधाम था। नवाब के बिहार गृह की अपेक्षा तो स्थिर था परंतु उससे विशेष प्रमोदजनक था। कोठरी में सुगंधित तैल संयुक्त दीप जल रहे थे और दीवार में, झरोखों में स्तम्भों पर, साया पर, आसन पर, युवतियों के शरीर पर जहां देखो तहां पुष्प और दीप दृष्टि गोचर होता था। सुगंध के मारे चतुर्दिक मह मह हो रहा था। दासीगण स्वेच्छानुसार हेममय नील, लोहित, श्याम रङ्ग के पट वस्त्र धारण किये हुए निर्भय भवन में झमकती गिरती थीं, जो जहां जिस काम पर नियुक्त थी अपनी स्वामिनी की सेवा में उन्मत्त फिरती थी। आज नवाब साहेब बिहार गृह में आकर सब के सङ्ग क्रीडा करेंगे और जिसको जो अभिष्ट होगा उसको वैसा पुरस्कार देंगे। कोई अपने भ्राता को सेवा में नियत कराने की लालसा से केश विन्यास कर रही है। कोई अपनी दासी की संख्या बढ़ाने की आशा करके केश को कुच पर्यन्त छिटका रही है। कोई नव प्रसूत पुत्र जन्य लज्जाचित्त प्राप्त हेतु शरीर को मल मल कर पाका कर रही है। कोई किसी सुन्दरी के समान नव भूषण पाने की कामना कर आंखों में सुरमा लगा रही है। एक ललना ने अपनी दासी को 'पेशवाज' पहिनाने में असावधानता देख उसको एक थप्पड़ मारा। कोई मदन मद मतवाली गर्व पूर्वक बैठी कंघी करवा रही थी कि दो चार बाल टूट पड़े देखतेही कोप करके नागिनि की भांति फुफकारने और दासी को अपवाद कहने लगी।

पुष्प वाटिका में स्थल कमलिनी की भांति एक कामिनी केश विन्यास समापन करके इतस्ततः भ्रमण कर रही थी। आज किसी को कहीं जाने का निषेध नहीं था। जहां की जो सुन्दरता थी विधना ने सब एकत्र किया था और जहां का जो अलंकार था कतलू ने सब साज दिया था जिसपर भी इस

४

स्त्री के मुख पर सौन्दर्य वा अलंकार के गर्व का कोई चिन्ह नहीं दरसता था। हंसी कुछ भी नहीं थी। आनन की कांति भी गम्भीर और स्थिर थी और आंखों से कठोरपन बरसता था।

इसी प्रकार भ्रमण करते २ बिमला परम शोभामय भवन में घुसी और पीछे से द्वार बंद कर दिया। इस महोत्सव के दिन भी उसमें केवल एक मलिन ज्योति दीपक जलता था। एक कोने में एक पलंग पर बिछौने के कोने से मुंह ढांपे एक स्त्री पड़ी थी। बिमला पट्टी के समीप खड़ी होकर मीठे स्वर से बोली मैं' आई हूं'।

सोने वाली ने चिहुंक कर मुंह खोला, बिमला को चीन्ह कर उठ बैठी किन्तु कछु बोली नहीं।

बिमला ने फिर कहा 'तिलोत्तमा। मैं आई हूं।'

तिसपर भी तिलोत्तमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया बरन बिमला के मुंह की ओर घूरती रही।

अब वह रूप तिलोत्तमा का नहीं रहा। शरीर दुबला हो गया, मुंह सूख गया, एक मैली लंगोटी लगाये पड़ी थी। उङ्गली में एक छल्ला भी नहीं था केवल प्राचीन अलंकार के चिन्ह जहां तहां दिखाई देते थे।

बिमला ने फिर कहा 'मैं अपने कहने के अनुसार आई हूं तू बोलती क्यों नहीं ?'

तिलोत्तमा ने कहा 'जो कहना था सो सब कह चुकी अब क्या कहूं ?'

बिमला ने तिलोत्तमा की बोली से जाना कि वह रोती है। मस्तक पकड़ कर उठाया और आंसू पोंछने लगी। आंचल सब भीग रहा था और बिछौना भी गीला होगया था।

बिमला ने कहा 'इस प्रकार दिन रात रोती रहेगी तो कब तक जीयेगी ?'

तिलोत्तमा ने कहा 'इतने दिन जी कर क्या किया और अब जी कर क्या करूंगी ।'

बिमला भी रोने लगी और थोड़ी देर में ठंढी सांस लेकर बोली अब क्या उपाय करना चाहिये ?'

तिलोत्तमा ने बिमला के अलंकार की ओर देखकर कहा 'उपाय करके क्या होगा !'

बिमला ने कहा 'बेटी ! लड़कपन नहीं करते । अभी क्या तूने कतलूखां को नहीं जाना अपने अनावकाश के कारण वा हमारे शोक निवारण के कारण उस दुष्ट ने अभी तक क्षमा किया था। आज तक उसकी अवधि थी। यदि आज हमलोगों को नृत्य शाला में न देखेगा तो न जाने क्या करेगा । तिलोत्तमा ने कहा ' अब और क्या करेगा ?'

बिमला ने कुछ स्थिर होकर कहा 'तिलोत्तमा ! आशा क्यों छोड़ती है ? जबतक शरीर में प्राण है तबतक धर्म्म प्रतिपालन करूंगी । '

तिलोत्तमा ने कहा 'तो माता ? यह अलंकार उतार के फेंक दे । इनको देखकर मुझे शूल होता है ।'

बिमला ने मुसकिरा कर कहा 'बेटी ! जब तक मेरा सब आभरण न देखले तब तक मेरी निंदा न करना । ' और वस्त्र के नीचे से एक खरतर छुरी निकाली । दीप की ज्योति पड़ने से उसकी प्रभा बिजलीसी चमकी और तिलोत्तमा डर गई । उसने पूछा ' यह तूने कहां पाया बिमला ने कहा ' कल महल में एक नई दासी आई है तूने उसको देखा है ?'

ति० । देखा है । आसमानी आई है ।

बि० । उसीके द्वारा इसको अभिराम स्वामी के यहां से मंगाया है ।

तिलोत्तमा चुप रही और उसका हृदय कांपने लगा । फिर बिमला ने पूछा ' तू आज यह अपना बेष न त्यागेगी !'

तिलोत्तमा ने कहा 'नहीं ।'

बि० । नाचने गाने न जायगी ?

ति० । नहीं ।

बि० । तो क्या तू बच जायगी ?

तिलोत्तमा रोने लगी । बिमला ने कहा 'स्थिर होकर सुन, मैंने तेरे छूटने के निमित्त उपाय किया है ।'

तिलोत्तमा आग्रह से बिमला के मुंह की ओर देखती रही कि उसने उसमान वाली अंगूठी निकाल कर उसके हाथ में दिया और बोली ' इस अंगूठी को अपने पास रख, नाच घर में न जाना, आधी रात के इधर तो यह उत्सव समाप्त नहीं होगा तब तक मैं पठान को बहलाये रहूंगी मैं तेरी माता हूं यह जान कर वह तुझको मेरे सामने न बुलावेगा । आधी रात को महल के द्वार पर जाना वहां एक मनुष्य तुझको ऐसीही अंगूठी दिखावेगा । निशंक तू उसके सङ्ग चली जाना, जहां कहेगी वहां वह तुझको पहुंचाय देगा । तू उससे कहना कि मुझको अभिराम स्वामी के कुटी में ले चलो ।

तिलोत्तमा को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और आनंद भी हुआ । थोड़ी देर कुछ कह न सकी फिर बोली 'यह तू क्या कहती है यह अंगूठी तुझको किसने दिया ?'

बिमला ने कहा 'यह भारी कथा है फिर कभी अवकाश में तुझसे कहूंगी । अभी मैंने जैसा कहा है वैसाही करना ।'

तिलोत्तमा ने कहा 'तेरी क्या दशा होगी तू कैसे बाहर आवेगी ?'

बिमला ने कहा 'मेरी चिंता न कर मैं कल प्रात को औकर

तुझसे मिलूंगी ।'

इस प्रकार तोष जनक बातें कहकर बिमला ने तिलोत्तमा को समझाया किंतु उसने तिलोत्तमा के हेतु जो अपना जाना बंद रक्खा इसका भेद तिलोत्तमा को कुछ न मालूम हुआ बहुत दिन से तिलोत्तमा के मुख पर प्रसन्नता के चिन्ह नहीं देख पड़ते थे बिमला की बातें सुनकर आज उसका वदन कमल सा खिल उठा । बिमला को भी उसकी दशा देखकर आनंद हुआ । गद्गद स्वर से बोली 'लो अब मैं जाती हूं ।'

तिलोत्तमा ने कुछ सकुच कर कहा 'मैं देखती हूं कि तू दुर्ग की सम्पूर्ण बातों को जानती है बता तो हम लोगों के और साथी कहां हैं कौन किस दशा में है ?'

बिमला ने देखा कि इस विपद में भी जगत सिंह तिलोत्तमा को नहीं भूलते । उसने उनका कठोर पत्र पाया था उस में तिलोत्तमा का नाम भी नहीं था, इस बात को सुनकर तिलोत्तमा को और भी दुःख होगा इसलिये उसका जिक्र न करके बोली—

'जगतसिंह भी इसी दुर्ग में हैं और कुशल से हैं ।'

तिलोत्तमा चुप रह गई ।

बिमला आंसू पोंछते २ वहां से चली गई ।

तेरहवां परिच्छेद ।

अंगूठी दिखलाना ।

बिमला के जाने के पीछे तिलोत्तमा के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई । पहिले तो यह सोचकर मनको बड़ा आनंद हुआ कि अब शीघ्र दुष्ट के बंधन से छूटूंगी और फिर बिमला का उस पर स्नेह और तद्वारा उद्धार । फिर सोचने लगी कि छूट कर

मैं कहां जाऊंगी? अब पिता के घर में कौन होगा? और रोने लगी। क्या राजकुमार कुशल से हैं। आर कहां हैं? क्या करते हैं? क्या वे भी बंदी हैं? और धाड़ मार रोने लगी 'हे अधम प्राण! राजपुत्र तेरे लिये बंदी हुए और तू अब भी नहीं निकलता! अब मैं क्या करूं? वे क्या कारागार में होंगे? वह कारागार कैसा होगा? क्या वहां और भी कोई जा सकता है वहां बैठे वे क्या सोचते होंगे? क्या इस पापिन का भी कभी स्मरण करते होंगे? हां करते क्यों न होंगे। हा! मैंही इस विपत्ति की कारण हूं। न जाने मुझको अपने मनमें कितनी गाली देते होंगे। हैं, मैं क्या कह रही हूं? क्या वे कभी किसी को गाली देते हैं? हां हमको भूल गए होंगे। हमको यवनगृहनिवासिनी समझ कर घृणा करते होंगे। किन्तु इसमें मेरा क्या दोष है? जैसे वे पराधीन हैं वैसे मैं भी हूं। मैं उनको समझा सकती हूं और यदि न समझेंगे तो उनके सामने कलेजा काढ़ कर रख दूंगी। प्राचीन काल में अग्निद्वारा परीक्षा होती थी अब कलिकाल में नहीं होती। यदि वे ऐसे न मानेंगे तो मैं अग्नि में खड़ी होकर अपनी सतीत्व सिद्ध कर दिखाऊंगी। हा! उस त्रिभुवन मनमोहन का दर्शन कब मिलेगा? वे कैसे बंधन से छूटेंगे? मैं अकेली छूट कर क्या करूंगी? यह अंगूठी मेरी मां ने कहां पाई? क्या इसके द्वारा उनका उद्धार नहीं हो सकता? मेरे बुलाने को कौन आने वाला है? क्या वह उनके छुड़ाने का कोई यत्न नहीं कर सकता? हे प्राणनाथ एक बेर तो आ मिलो!

एक बेर तो इस दग्ध हृदय को शीतल करो।

तिलोत्तमा इस प्रकार विलाप कर रही थी कि एक परिचारिका आई।

तिलोत्तमा ने उससे पूछा 'रात कितनी गई होगी ?'

दासी ने कहा 'दोपहर ।'

जब अपना काम करके दासी चली गई तिलोत्तमा अंगूठी लेकर चली पर मारे भय के हाथ पैर कांपते थे और मुंह भी सूखा जाता था, कभी चलती थी फिर खड़ी होजाती थी, पैर आगे नहीं पड़ता था, किसी प्रकार महल के द्वार पर्यन्त गई देखा तो पहरे वाले सब खोजा हबशी उन्मत्त पड़े हैं, किसी ने उसको देखा नहीं किंतु तिलोत्तमा को यही बोध होता था कि सब हमको देख रहे हैं और मारे डर के सिमटी जाती थी। ज्यों त्यों करके द्वार के बाहर पहुंची, वहां एक सिपाही अपनी नौकरी पर खड़ा था । उसने तिलोत्तमा को देखकर कहा तुम्हारे पास अंगूठी है ?'

तिलोत्तमा ने डरते २ अंगूठी दिखाई । उसने उसको भली भांति उलट पुलट कर देखा और फिर उसी बनत की एक अपने पास से निकाल कर दिखाई और बोला " हमारे सङ्ग आओ डरो मत । "

तिलोत्तमा उसके साथ २ चली । अंतःपुर के पहरे वालों की जो दशा थी वही सब स्थान पर थी और विशेष कर आज की रात कुछ रोक टोक नहीं थी । वह प्रहरी तिलोत्तमा को लिये लिये अनेक द्वार घर, आंगन में फिरता २ दुर्ग के फाटक पर पहुंचा और खड़ा होकर पूछने लगा ' अब तुम कहां जाओ-गी ? जहां कहो वहां तुमको पहुंचादें ।'

बिमला ने जो कह दिया था वह तो तिलोत्तमा को भूल गया, पहिले जगतसिंह का ध्यान आया और मन में हुआ कि वहीं चलने को उससे कहें परंतु लज्जा ने कहने न दिया । प्रहरी ने फिर पूछा ' कहां चलोगी ? '

तिलोत्तमा के मुंह से शब्द नहीं निकला मानो घबरा सी गई और कलेजा धड़कने लगा आंखें खुली थीं परंतु आगे का मार्ग नहीं सूझता था। इतने में मुंह से आकस्मित जगतसिंह का नाम निकला।

पहरेवाले ने कहा 'जगतसिंह तो कारागार में हैं वहां कोई जा नहीं सकता। किंतु हम को यह आज्ञा है कि तुम जहां कहो वहां तुम को पहुंचा दें अतएव चलो वहीं लेचलें।'

फिर वह दुर्ग में घुसा और तिलोत्तमा भी कठपुतली की भांति उसके पीछे २ चली। कारागार के द्वार पर उसने जाकर देखा कि सब पहरेवाले सजग अपने २ काम में चैतन्य हैं। एक से पूछा कि राजपुत्र कहां हैं? उसने उङ्गली से दिखा दिया। फिर इसने पूछा कि जागते हैं कि सोते? वह द्वार पैठके गया और आकर कहने लगा 'जागते हैं।'

अंगूठी वाले ने कहा 'द्वार खोल दो यह स्त्री उनसे भेंट करेगी।'

पहरे वाले ने कहा "क्या? ऐसी आज्ञा नहीं है।"

तब अंगूठी वाले ने उसमान का चिन्ह दिखाया और उसने तुरंत केवाड़ खोल दिया।

राजकुमार एक सामान्य चारपाई पर लेटे थे, द्वार के खुलने का शब्द सुनकर उठ बैठे। तिलोत्तमा द्वार पर ठिठक रही।

अंगूठी वाले ने कहा 'चलो यहां क्यों खड़ी हो रही'? तिसपर भी तिलोत्तमा आगे नहीं बढ़ी, फिर उसने कहा 'चलो, यहां ठहरना उचित नहीं है।'

तिलोत्तमा पीछे हटने लगी परंतु उधर को भी पैर नहीं उठा। प्रहरी घबराया।

इतनेमें तिलोत्तमा को कुछ साहस हो आया और भीतर घुसी ।

राजकुमार को देखतेही उसकी और भी रही सही सुध भूल गई और नीचे सिर करके खड़ी हो रही । "

पहिले तो राजकुमार ने उसे चीन्हा नहीं मन में शंका करने लगे कि यह कौन स्त्री है और क्यों खड़ी है ? चारपाई पर से उठे और द्वार के समीप आकर तिलोत्तमा को पहिचाना ।

दोनों की आंखें चार हुईं फिर तिलोत्तमा ने सिर झुका लिया पर शरीर की गति से यह जान पड़ा कि राजकुमार के चरण पर गिरा चाहती है ।

राजपुत्र पीछे हटकर खड़े हुए और बोले ।

'क्या बीरेन्द्रसिंह की कन्या है ? '

तिलोत्तमा को सांप ने डस लिया बीरेन्द्रसिंह की कन्या ? यह पूछना कैसा ? क्या जगतसिंह तिलोत्तमा का नाम भी भूल गए ? दोनों कुछ काल चुप रहे । फिर राजपुत्र ने कहा ' यहां तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? ' यह प्रश्न कैसा ? तिलो-त्तमा को घुमटा आने लगा और ऐसा मालूम होता था कि घर, द्वार, सेज, दीप सब घूम रहा है। चौकठ पर झुक कर खड़ी हो रही ।

देर तक राजकुमार उत्तर पाने के अभिलाषी खड़े थे अंत को बोले—तुमको क्लेश होता है, फिर जाओ पुरानी बातों को भुलादो । '

तिलोत्तमा का भ्रम दूर हुआ और वह टूटे वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़ी ।

चौदहवां परिच्छेद।

मोह।

जगतसिंह ने झुक कर देखा कि वह बेसुध होगई और अपने वस्त्र से वायु करने लगे तिस पर भी उसको चेत नहीं हुआ तब पहरे वाले को बुला कर बोले 'देखो इस स्त्री को मूर्च्छा आगई, इसके सङ्ग कौन आया है? उससे कहो कि इसका यत्न करे।'

उसने उत्तर दिया 'इसके सङ्ग तो मैंही आया हूं।' राजपुत्र ने आश्चर्य से कहा 'तुम।'

प्रहरी ने कहा 'और कोई नहीं है।'

"फिर क्या होगा? किसी दासी को बुलाओ?"

प्रहरी चला फिर राजपुत्र ने उसको पुकार कर कहा 'आज रात को कौन अपना आनंद छोड़ कर इसकी सुधि लेने आवेगा?'

प्रहरी ने कहा 'यह भी सच है। और पहरे वाले किस को भीतर आने देंगे। मैं दूसरे किसी को कारागार में नहीं बुला सकता।'

राजपुत्र ने कहा 'फिर क्या करोगे? इस का एक उपाय है, तुम चट पट किसी दासी के हाथ नवाब की बेटी के पास कहला भेजो।'

प्रहरी जल्दी से दौड़ा। राजकुमार अपनी बुद्धि के अनुसार तिलोत्तमा की शुश्रूषा करने लगे। उस समय उनके मन में क्या क्या तरङ्ग उठी होंगी? अकेले तिलोत्तमा को लिये कारागार में व्यग्र बैठे सोचते थे कि 'यदि आयेशा के पास सम्बाद न पहुंचा अथवा वह न आ सकी तो क्या होगा?'

इतने में तिलोत्तमा को कुछ २ चेत होने लगा। उसी समय जगतसिंह ने देखा कि प्रहरी के सङ्ग दो स्त्री आती है।

एक घूंघट काढ़े है । दूर से उसके उन्नत शरीर और गजगति से जाना कि दासी साथ लिये आयेशा आपही आती है ।

जब दोनों द्वार पर पहुंच गयीं पहरे वाले ने अंगूठी वाले से पूछा " यह भी दोनों भीतर जाँयगी ? '

उसने कहा ' तुम जानो—मैं नहीं जानता । '

रक्षक ने कहा ' बेश ' और दोनों स्त्रियों को रोक दिया । आयेशा ने घूंघट हटा कर कहा ' हमको जाने दो यदि इसमें तुम्हारी कोई हानि हो तो मैं दोषी हूंगी । '

पहरे वाला आयेशा को चीन्हता नहीं था परन्तु दासी ने उसके कान में कहा कि " यह नवाब की बेटी है । उसने हाथ जोड़ा और कहा ' हमारे अज्ञात अपराध को क्षमा कीजिये ' आप को जाने की कहीं रोक नहीं है । '

आयेशा भीतर घुसी । यद्यपि वह हंसती नहीं थी पर मुखं उसका प्रफुल्ल कमल की भांति खिला हुआ था । कारागार दीप्तिमान होगया ।

उसने राजपुत्र से पूछा ' यह क्या हुआ ? '

रजपुत्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया, उंगली से तिलोत्तमा की ओर संकेत कर दिया ।

तिलोत्तमा को देखकर आयेशा ने पूछा ' यह कौन है ? '

राजपुत्र ने संकोच से कहा ' वीरेन्द्रसिंह की कन्या । '

आयेशा ने उसको गोदी में उठा लिया और दासी के हाथ से गुलाब लेकर उसके मुंह पर छिड़कने लगी । दासी पंखा झलने लगी । तिलोत्तमा चैतन्य हुई और उठ बैठी । मन में आया कि यहां से चलदे पर पुरानी बातों का ध्यान आ गया और फिर सिर घूमने लगा । आयेशा ने उसका हाथ पकड़ कर कहा ' बहिन ' तुम क्यों घबराती हो ? तुम्हारे शरीर में

शक्ति नहीं है, तुम हमारे घर चलकर विश्राम करो, फिर जहां चाहोगी वहां तुमको भेज दूंगी ।'

तिलोत्तमा बोली नहीं ।

आयेशा ने प्रहरी के मुंह से सब बातें सुनी थी तिलोत्तमा के मन के सन्देह की शंका कर बोली 'मैं तुम्हारे शत्रु की कन्या तो अवश्य हूं परन्तु इससे तुम कुछ सन्देह न करो । मैं विश्वासघातिनी नहीं हूं । मैं कभी किसी से कुछ न कहूंगी । प्रात होते २ तुम जहां कहोगी मैं दासी द्वारा तुमको वहीं भेज दूंगी '

आयेशा ने यह सब बातें ऐसे मीठे स्वर से कहीं कि तिलोत्तमा को विश्वास आ गया और उसके सङ्ग चलने को प्रस्तुत हुई ।

आयेशा ने कहा 'तुमसे चला न जायगा, इस दासी का कंधा पकड़ कर चलो ।'

उसके कंधे पर हाथ रक्खे तिलोत्तमा धीरे धीरे चली । आयेशा जब राजकुमार से बिदा होने लगी वे उसके मुंह की ओर देखने लगे । उसने समझा कि कुछ कहेंगे दासी से बोली तुम, इसको हमारे शयनागार में पहुंचा कर आओ तब मैं चलूंगी ।'

दासी तिलोत्तमा को लेकर चली ।

जगतसिंह ने मन में कहा 'यह हमारा तुम्हारा अन्तिम साक्षात है ।' और फिर ठंढी सांस लेकर चुपचाप, जबतक तिलोत्तमा आंखों के ओट नहीं हो गयी, उसी को देखते रहे ।

तिलोत्तमा भी सोचती थी कि 'यह हमारा तुम्हारा अन्तिम साक्षात है ।' और जबतक वे देख पड़ते थे तबतक पीछे फिर कर नहीं देखा और जब देखा तो जगतसिंह को

नहीं पाया अंगूठी वालेने तिलोत्तमा के समीप आकर कहा 'अब मैं जाता हूं।'

तिलोत्तमा ने निषेध किया पर दासी ने कहा 'हां!' प्रहरी ने कहा 'तो तुम्हारे पास जो अंगूठी है उसको फेर दो।'

तिलोत्तमा ने अंगूठी उतार कर उसको दे दिया और वह चला गया ॥

पन्द्रहवां बयान ।

मुक्त कंठ ।

जब तिलोत्तमा और दासी दोनों बाहर चली गयीं आयेशा पलङ्ग पर बैठ गयी क्योंकि वहां कोई और बैठने का स्थान तो थाही नहीं। और जगतसिंह समीप ही खड़े रहे।

आयेशा जूड़े में से एक गुलाब का फूल लेकर नोचने लगी और बोली 'राजकुमार आप की चेष्टा से जान पड़ता है कि आप मुझ से कुछ कहेंगे! यदि मैं आप का कोई काम करसकी हूं तो आप बिना संकोच कहैं मैं प्रसन्नता पूर्वक करूंगी।'

राजकुमार ने कहा 'नवाब पुत्री! मैं किसी प्रयोजन के निमित्त तुमसे साक्षात करना नहीं चाहता था किन्तु अपनी दशा देख कर मुझको ज्ञात होता है कि अब हमसे तुमसे देखा देखी न होगी, यह अन्त समय जान पड़ता है। मैं तुम्हारा चिर बाधित हूं इसका प्रतिउपकार कैसे हो? अपने अदृष्ट से मुझको यह भरोसा नहीं है कि तुम्हारा कोई काम करसकूं अतएव निवेदन करता हूं कि यदि कोई अवसर आवै तो तुम आज्ञा करने में संकोच न करना। जैसे बहिन भाई से कहने में सकुचती नहीं उसी प्रकार अब तुम भी करो।

जगतसिंह ने यह बातें ऐसे स्वर से कहीं कि आयेशा को भी दुःख होने लगा और बोली 'आप ऐसे निराश क्यों होते हैं! सबै दिन नाहिं बराबर जात।'

जगतसिंह ने कहा 'मैं निराश नहीं होता हूं पर अब आशा करके क्या करना है? अब यही इच्छा है कि इस पापी जीवन का त्याग करूं! अब इस कारागार को छोड़ने की अभिलाषा नहीं है।'

इस करुणामय बचन को सुन कर आयेशा बहुत विस्मित हुई और कातर भी हुई और राजकुमार प्रति विशेष स्नेह उत्पन्न हुआ और उसने उनका हाथ पकड़ लिया। थोड़ी देर में हाथ जोड़ कर उनके मुंह की ओर देख करके बोली।

'जगतसिंह! ऐसा दुःख क्यों करते हो? मुझको अन्य न समझो। यदि साहस दो तो मैं कहूं—बीरेन्द्रसिंह की कन्या कि—

उसकी बात पूरी न होने पायी कि राजकुमार बोल उठे 'उस बात से कुछ काम नहीं वह तो स्वप्न था होगया।'

आयेशा चुप रही और जगतसिंह भी चुप रहे। फिर आयेशा ने मुंह नीचा कर लिया।

राजपुत्र कांप उठे और उनके हाथ पर एक बून्द पानी का गिरा। नीचे आंख करके देखा तो आयेशा रोती थी और कंठ पर्यन्त आंसू की धारा बह रही थी।

विस्मित होकर बोले 'आयेशा यह क्या, तुम रोती क्यों हो!

आयेशा चुप चाप फूल को नोचती रही अन्त को बोली।

'युवराज! मैं यह नहीं जानती थी कि आज तुमसे इस तरह विदा हूंगी। मैं तो सब क्लेश सह सकी हूं परन्तु तुम को अकेले इस कारागार का दुख भोगने को छोड़ कर नहीं

जा सक्ती। तुम हमारे सङ्ग चलो घोड़सार में घोड़े बंधे हैं, मैं एक तुमको दे दूंगी तुम अपने लश्कर में चले जाओ ।

राजपुत्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और कुछ उत्तर न दे सके आयेशा फिर बोली, 'जगतसिंह आओ चलो ।'

राजकुमार बोले 'आयेशा ! क्या तुम हमको कारागार से निकाल होगी ?'

आयेशा ने कहा 'अभी इसी दण्ड ।'

ज०—अपने पिता की आज्ञा से ?

आ०—आप इसकी कुछ चिन्ता न करें जब आप लश्कर में पहुंच लेंगे तब मैं उनसे कहूंगी ।

'पहरेवाले कैसे जाने देंगे ?'

आयेशा ने अपने गले में से रत्न जड़ित कंठा निकाल कर कहा 'पहरे वाले इसकी लालच से छोड़ देंगे ।'

फिर राजपुत्र ने कहाँ 'जब यह बात प्रकाशित होगी तो तुम्हारा पिता तुमको दंड न देगा ?

'इस में कुछ हानि नहीं ।'

'मैं न जाउंगा ।'

आयेशा का मुंह सूख गया और उदास होकर बोली 'क्यो?'

ज०—'हम अपने प्राण बचाने के लिये तुम को दुःख नहीं दे सकते ।'

'क्या आप वास्तविक न जांयगे ?'

राजकुमार ने कहा 'तुम अकेली जाओ ।'

आयेशा फिर चुप रह गयी और आंखों से आंसू चलने लगे।

उसको रोते देख राजपुत्र ने कहा 'आयेशा क्यों रोती हो?'

आयेशा ने उत्तर नहीं दिया। फिर राजपुत्र ने कहा ।

आयेशा ! तुम अपने इस रोने का कारण मुझ से कहो केवल

हमारा बन्दी होना इसका कारण नहीं हो सक्ता क्योंकि तुम्हारे पिता के कारागार में हमारे ऐसे अनेक हैं।'

आयेशा आंचलसे आंसू पोछने लगी और फिर बोली 'राजपुत्र अब मैं न रोऊंगी।'

राजपुत्र अपने प्रश्न का उत्तर न पाने से उदास हुए और दोनों थोड़ी देर सिर नीचा किये चुपचाप बैठे रहे।

इतने में एक और मनुष्य आया पर किसी ने उसको देखा नहीं, वह आकर उनके समीप खड़ा हुआ तब भी किसी ने नहीं देखा। थोड़ी देर चुप चाप खड़ा रहा फिर क्रोध से बोला 'आयेशा! खूब'।

दोनों ने उसकी ओर देखकर उसमान को पहिचाना।

उसमान अंगूठी वाले प्रहरी से सब बातें सुनकर यहां आया था। उसको देख राजपुत्र को आयेशा के निमित्त भय हुआ कि उसमान और कतलूखां इसका तिरस्कार करेंगे। क्योंकि उसमान के क्रोध मय बचन से यही पाया गया। आयेशा ने उसमान के मर्म बचन को भली भांति समझा और उसका मुंह लाल हो गया परन्तु अधीर नहीं हुई। बोली 'क्या खूब।'

उसमान ने पूर्ववत भाव से कहा 'नवाबपुत्री को अकेली रात के समय कारागार में बन्दी के साथ बात करना अच्छी बात है? रात को बन्दी के निमित्त कारागार में आनाही उत्तम है?'

आयेशा से यह बात सही नहीं गयी। उसमान के मुंह की ओर देखकर बोली। ऐसी बातें उसके मुंह से उसने कभी सुनी न थीं। 'मेरी इच्छा थी मैं रात को बन्दी से बात करने को आई। मैं अच्छा करती हूं वा बुरा तुमको मेरे कामों से मतलब?'

उसमान विस्मित हुआ और कुपित होकर बोला।

'हमसे मतलब है वा नहीं कल प्रातः काल नवाब के सामने बताऊंगा।'

आयेशा ने कहा ' जब पिता हमसे पूछेंगे हमी उत्तर दे लेंगे। तुम चिन्ता न करो।'

उसमान ने फिर व्यंग करके कहा 'और यदि हमी पूछें?'

आयेशा उठ खड़ी हुई और देर तक उसके मुंह की ओर घूरती रही उसकी आंखें और बड़ी २ हो गयीं। बदन का रङ्ग पलट गया और एक ओर की लट भी खुल पड़ी और हृदय समुद्र की लहर की भांति कांपने लगा अति परिष्कार स्वर से बोली 'अच्छा यदि तुम पूछते हो तो मेरा यही उत्तर है कि मैं इस बन्दी को चाहती हूँ।'

उस समय यदि वज्र गिरता तो राजपुत्र अथवा पठान को इतना अधिक विस्मय न होता जगतसिंह की आंखें खुल सी गईं और आयेशा के रोने का कारण अब जानपड़ा। उसमान ने पहिले भी इसका सन्देह किया था और इसी निमित्त आयेशा पर इतना लाल पीला हुआ किन्तु यह उसको स्वप्न में भी सम्भव न था कि वह उसके सामने 'बेबाकाना' बात करेगी। वह चुप रहा।

आयेशा कहने लगी "सुनो, उसमान मैं इस बन्दी को चाहती हूं-इस जीवन में दूसरा कोई मेरा हाथ नहीं पकड़ सकता। कल यदि वधभूमि इसके रुधिर द्वारा अपनी पिपासा शान्ति करे। (यह कहते समय आयेशा कांप उठी) तो भी इसकी मनोहर मूर्ति अपने हृदय मन्दिर में स्थापित कर मरण पर्यन्त पूजती रहूंगी। अथ पश्चात यदि फिर इसका दर्शन न मिले और यह कोटियों स्त्री के झुंड में विहार करे और मुझको

भूल जाय तब भी मैं इसकी प्रेमाकांक्षी दासी बनी रहूंगी ! और सुनो । यदि पूछो कि इतनी देर अकेली मैं क्या बातें करती थी तो सुनो धन से विनय से जैसे होगा पहरेवालों को वश करूं, पिता के घोड़सार से घोड़ा दूं और इस बन्दी को अभी इसके पिता के लश्कर में पहुंचाऊं परन्तु इसको स्वीकार नहीं है, नहीं तो अब तक तुम इसकी परछांहीं भी न देख पाते।"

आंसू पोंछ कर थोड़ी देर चुप रही फिर मधुर भाव से बोली, उसमान, इतनी बातें कह कर मैंने तुमको बड़ा क्लेश दिया, मेरा अपराध क्षमा करो तुम को मेरा स्नेह है और मुझ को तुम्हारा स्नेह है यह हम को उचित नहीं था । किन्तु तुमने हमारा विश्वास नहीं किया । आयेशा जो काम करती है उसको छिपाती नहीं । आज तुम्हारे सामने कहा है यदि काम पड़ेगा तो कल पिता के सामने भी ऐसाही कहूंगी ।'

फिर जगतसिंह की ओर देख कर बोली, 'आप भी मेरा अपराध क्षमा करें । यदि उसमान ने आज हमको दुःख न दिया होता तो कदापि इस बात को प्रकाश न करती—तीसरे कान तक न पहुंचने देती ।'

राजपुत्र चुपचाप खड़े अन्तर्ज्वाला से हृदय को जला रहे थे उसमान ने भी कुछ नहीं कहा, आयेशा ने कहा ।

उसमान, यदि मैंने कोई अपराध किया हो तो क्षमा करना, मैं वही तुम्हारी प्यारी बहिन हूं और बहिन समझ कर तुमको भी प्रेम संकोच न करना चाहिये । अब मुझको इस औसर पर निराश होकर डुबाओ मत ।

यह कहकर दासी के आने की आशा छोड़ अकेली चल खड़ी हुई । उसमान थोड़ी देर भयचक सा होरहा और फिर अपने स्थान को चला गया ।

सोलहवां परिच्छेद ।

बदला चुकाना ।

आज रात को कतलूखां के विलास भवन में नाच होता था परन्तु न तो वहां कोई अन्य नाचनेवाली थी और न अन्य कोई देखनेवाला था जैसे और मोगल सम्राट ऐसे अवसरपर सभा में बैठ कर आनन्द करते थे वैसा नियम कतलूखां के यहां नहीं था । वह केवल अपनीही इन्द्रियोंको तृप्त करता था । आज वह अकेला अपनी रमणियों को लिये नाच राग में उन्मत्त था । खोजों के व्यतिरिक्त मनुष्य की आकृति नहीं देख पड़ती थी । कोई रमणी नाचती थी कोई गाती थी कोई लिपटी उसके शरीर के ताप को शीतल करती थी ।

इन्द्रिय के सुख देनेवाली सामग्री सब उस स्थान पर एकत्र थी । गृह में प्रवेश करतेही मन्द सुगन्ध वारि से शरीर शीतल हो जाता था । अनेक चांदी और शीशे के दीप स्थान स्थान पर प्रज्वलित थे । अपरिमित कुसुम राशि कहीं माला-कार, कहीं स्तूपाकार, कहीं स्तवकाकार कहीं रमणियों के केश में कहीं उनके कंठ में विशेष प्रभा प्रकाशित करती थी । किसी के हाथ में फूल का पंखा था कोई फूल का आभरण पहिने थी और कोई परस्पर पुष्पगन्दुक खेल रही थी । कहीं प्रसून की सुगन्धि कहीं गन्ध मै वारि की सुगन्धि, कहीं सौरभ सम्पन्न दीप की सुगन्धि, और कहीं सुवासित द्रव्य मार्जित विलासिनियों के शरीर की सुगन्धि अर्थात् दशोदिक सुगन्धिमय हो रहा था । दीप की प्रभा, पुष्प की प्रभा, रत्ना-लंकार की प्रभा और सर्वोपरि कुटिल कटाक्ष कारी कामनी मण्डल के उज्वल नयनों की प्रभा से विलास गृह जगमगा रहा

था । सप्त सुर मिलित वीणा आदि की ध्वनि आकाश में गम गमा रही थी तद्धिक कोकिल कंठी गाने वालियों की गीत अप्सराओं के हृदय में लज्जा उत्पादन करतीं थीं जिस पर ताल लय मिलित नाचने वालियों के पैर के घुंघुरू अपना पृथक चमत्कार दिखाते थे ।

और देखो, मानों कमलबन में हंसिनी शीतल समीर स्पर्श से उन्मत्त होकर नाचती हैं, प्रफुल्ल कमलबदनी सब घेरे बैठी हैं । उस नील पटवाली को देखो जिसके दुपट्टे के सितारे उडुगण की भांति चमकते हैं । देखो उसके नेत्र कैसे बड़े २ हैं । उसको देखो जो हीरे का तारा लगाये बैठी है ! देखो उसका ललाट कैसा चौड़ा है ! क्या बिधना ने इस ललाट में यही विलासघर का वास लिखा था ? उस पुष्पा भरण वाली को देखो ! उसने कैसा उत्तम शृंगार किया है ? उस कोमल. किंचित रक्त ओष्ठवाली को देखो कैसा मन्द मन्द हंस रही है । देखो उसके झीने ओढ़ने से उसके शरीर का रङ्ग कैसा झलक रहा है । मानो निर्मल नीलाम्बु में से पूर्ण चन्द्र की ज्योति झलक रही है । उसको देखो जो गर्दन झुकाये हंस २ कर बातें कर रही है देखो उसके कान का बाला कैसा हिल रहा है ? वह सुन्दर केशवाली कौन है ? उसने अपने बाल पेटी पर्यन्त क्यों छिटकाये हैं ? क्या शिव के मस्तक पर नागिनियों की जटा बनाती है ?

और वह सुन्दरी कौन है जो कतलूखां के समीप बैठी हेम पात्र में सुरा ढाल रही है ? वह कौन है जो सबको छोड़ कर कतलूखां बार २ अतृप्त लोचन से उसी को देख रहा है ? वह तो व्यर्थ अपनी कटाक्षों से उसके हृदय को बेध रही है । हां ठीक है वह विमला है । इतनी सुरा क्यों ढाल रही है ? ढाल

ढाल और ढाल, वस्त्र के भीतर छुरी तो है न? हां है क्यों नहीं। तो इतना हंसती कैसे है? कतलूखां तो तेरीही ओर देख रहा है। हैं यह क्या? कटाक्ष! और फिर यह क्या? देखो सुरा से उसने यवन को विक्षिप्त कर दिया। इसी कारण जान पड़ता है। सबको हटा कर आप कतलूखां के पास बैठी है। क्यों न हो? यह हंसी! यह भाव! यह मधुर भाषण यह कटाक्ष फिर मद्य। कतलूखां तो चैतन्य है पर क्या हुआ। विमला तो अभी पिला रही है। यह क्या शब्द है? क्या कोई गाता है? किसी मनुष्य के गाने का शब्द है? विमला गाती है। क्या सुर है। क्या ध्वनि। क्या लय देखो उसके झुमके कैसे हिलते हैं? देखो माथा कैसा हिलाती है। और सुरादे, ढाल ढाल। यह क्या? देखो विमला नाचती है। क्या छवि है? क्या भाव बताती है? और सुरा दे। शरीर देखो कैसा सुन्दर। गर्दन देखो। कतलुखां सम्भलो। सम्भलो कामाग्नि बढ़ चली! ऊह! अब बदन से चिनगारियां निकलने लगी ला प्याला। आहा। ला प्याला। मेरी प्यारी और हंसी। और कटाक्ष। फिर शराब! फिर शराब! 'हह हह हमको मद्य दे मम मम मत कर देर। बच बच बहु विनती करत कक कक करु न अबेर॥ जोड़त जोड़त हाथ हम प्यालो प्यालो लाओ। तरसत तरसत हाय मोहि जल्दी जल्दी प्याओ॥ आं आं प्यालो दे हमें प्यालो देदे प्याल। आंदे दें दे मत देर कर मत कर प्यारी बाल॥'

कतलूखां उन्मत्त होगया। विमला को पुकार कर बोला 'प्यारी तू कहां गई?'

विमला ने उनके कन्धे पर एक हाथ देकर कहा 'मैं तो आपके चरणों के समीप हूं।' और दूसरे हाथ से कचसे।

कतलूखां ने चिल्ला कर विमला को ढकेल दिया और मिसूल

वृक्ष की भांति आप भी भूमि पर अचेत गिर पड़ा । बिमला ने अपना काम कर लिया ।

'पिशाची । शयतानिन ।' कह कर कतलूखां चिल्लाने लगा । और मुंह से फेन छूटने लगा ।

बिमला ने कहा 'मैं पिशाची नहीं हूं, शयतानिन नहीं हूं मैं तो बीरेन्द्र सिंह की बिधवा स्त्री हूं, और वहां से झट निकल खड़ी हुई ।

कतलूखां की हिचकियां बंध गईं तथापि यथाशक्य चिल्लाता रहा । स्त्रियां भी सब रोने लगीं । बिमला भी रोते २ चली । भीतर बात चीत करने का शब्द सुन भागी एक कोठरी में बहुत से पहरे वाले और खोजा बैठे थे, उन्होंने उसको रोते देख पूछा 'क्या हुआ ?'

उसने उत्तर दिया 'बड़ा अनर्थ हुआ । शीघ्र जाओ, गृह में लुटेरे घुसे हैं, मैं तो जानती हूं कि नवाब मारे गए ।'

इतना सुनतेही वे सब औंधे मुंह दौड़े । बिमला भी महल के द्वार की ओर भागी । वहां के पहरे वाले सब सो रहे थे वह निर्विघ्न द्वार के बाहर पहुंची । चारो ओर उसको ऐसाही देख पड़ा तब बेग से दौड़ने लगी । फाटक पर पहुंच कर देखा तो यहां सब जागते थे । एक ने उसको देख कर पूछा 'कौन है ? कहां जाती है ?'

उस समय महल में बड़ा कोलाहल हो रहा था, चारो ओर से लोग उसी ओर भागे जाते थे । बिमला ने कहा 'यहां बैठे क्या करते हो ? कोलाहल नहीं सुनते हो ?'

पहरे वाले ने पूछा 'कैसा कोलाहल ?'

बिमला ने कहा 'महल में अनर्थ हो रहा है, लुटेरे आन पहुंचे हैं ।'

वे सब फाटक छोड़ कर दौड़े और विमला ने अपनी राह ली।

थोड़ी दूर जाकर उसने देखा कि एक पुरुष एक वृक्ष के नीचे खड़ा है। देखतेही उसने अभिराम स्वामी को पहिचाना। ज्यों उनके समीप पहुंची कि स्वामी जी बोले 'मैं तो घबरा गया था, दुर्ग में कोलाहल कैसा होता है?'

विमला ने कहा 'मैं तो अपना काम कर आई, अब यहां बहुत बात करने का अवकाश नहीं है, जल्दी घर चलो फिर मैं सब बताऊंगी। तिलोत्तमा घर पहुंच गयी।'

अभिराम स्वामी ने कहा 'वह अभी आसमानी के संग जाती है आगे मिल जायगी।'

दोनों जल्दी २ चले और कुटी में पहुंच कर देखा कि आयेशा की अनुग्रह से आसमानी के सङ्ग तिलोतमा भी पहुंच गयी। वह अभिराम स्वामी के पैर पर गिर कर रोने लगी। स्वामी जी ने सन्तोष देकर कहा 'ईश्वर की कृपा से तुम सब दुष्ट के हाथ से छूटी हो अब यहां ठहरना उचित नहीं है। मुसल्मान यदि सुन पावेंगे तो अबकी बार प्राण से मार डालेंगे चलो रातो रात यहां से चल दें।'

यह बात सब के मन भायी॥

सतरहवां परिच्छेद।

अन्त काल।

विमला के भागने के थोड़ेही काल पीछे एक कर्मचारी ने जगतसिंह से कारागार में जाकर कहा।

"युवराज। नवाब साहेब का मरण काल समीप है, वे आपको बुलाते हैं।'

युवराज ने आश्चर्य से कहा 'क्या?'

उसने कहा 'महल में किसी शत्रु ने आकर नवाब साहेब को मारा और भाग गया। अभी प्राण है, किन्तु अब कुछ आशा नहीं आप शीघ्र चलें नहीं तो फिर भेंट न होगी।'

राजपुत्र ने कहा 'ऐसे समय में मेरे बुलाने का क्या 'कारण है?'

उसने कहा 'मैं नहीं जानता, मैं तो केवल सम्बाद देने आया हूं।'

युवराज दूत के साथ चले महल में पहुंच कर देखा कि कतलूखां के जीवन का दीप ठंढा होने चाहता है। उसमान आयेशा और, और और पुत्र पुत्री, पत्नी उपपत्नी, दास दासी और मंत्री आदि सब बैठे धाड़ मार मार रो रहे हैं किन्तु आयेशा मन ही मन रोती थी, आंसु की धारा दोनों कपोलों के ऊपर होकर बह रही थी। पिता का सिर गोद में लिये चुप चाप बैठी थी।

जगतसिंह ने देखा कि वह बड़ी धीर बैठी है 'निर्वात निष्कम्प मिव प्रदीपम्।'

राजकुमार के पहुंचते ही इसाखां नाम खोजा ने उनका हाथ पकड़ कतलूखां के समीप लेजाकर चिल्ला के बोला 'युवराज जगतसिंह आये हैं।'

कतलूखां ने कहा 'शत्रु, मैं मरता हूं मेरा कहा सुना माफ़।'

जगतसिंह ने कहा 'इस समय मैंने माफ़ किया।'

कतलूखां ने फिर कहा 'स्वीकार कीजिये तो कुछ कहूं।'

जगतसिंह ने पुछा कि 'क्या स्वीकार करूं?'

कतलूखां ने कहा 'मेरा हाथ।'

अभिप्राय समझ उसमान ने जगतसिंह का हाथ देकर

कतलूखां का हाथ पकड़ा दिया ।

जगतसिंह को बड़ा कोप हुआ पर चुप रहे बोले नहीं ।

कतलूखां ने फिर कहा 'बालक सब युद्ध प्यास ।'

आयेशा ने तुरन्त शरबत पिलाया ।

'युद्ध — कुछ काम नहीं — सन्धि !'

जगतसिंह ने कुछ उत्तर नहीं दिया कतलूखां मुंह देखने लगा । फिर कष्ट से बोला 'स्वीकृत नहीं है ?'

युवराज ने कहा 'यदि पठान दिल्लीश्वर के आधीन हो जांय तो स्वीकार किया ।'

कतलूखां ने फिर कहा 'उड़िस्सा ?'

जगतसिंह ने उत्तर दिया 'यदि कार्य सिद्ध हुआ तो तुम्हारे पुत्रों से उड़िस्सा न छूटेगा ।'

कतलूखां के चेहरे की रंगत हरी हो आई और बोला, 'आप छूटे — जगदीश्वर — उत्तम'

जगतसिंह जाने लगे तब आयेशा ने झुक कर पिता के कान में कुछ कह दिया । कतलूखां ने ख्वाजा ईसा की ओर देख कर राजपुत्र की ओर देखा ख्वाजा ने राजपुत्र से कहा 'जान पड़ता है कि अभी आप से कुछ कहना है ।'

राजपुत्र लौट आये । कतलूखां ने कहा 'कान ।'

राजपुत्र समझ गये और समीप जाकर झुक कर कतलूखां के मुंह के पास कान कर दिया ।

कतलूखां ने कहा 'वीर ।'

ठहर गया फिर बोला 'वीरेन्द्रसिंह-प्यास'

आयेशा ने फिर शरबत दिया ।

'वीरेन्द्रसिंह की कन्या ।'

राजपुत्र को सांप सा डस गया और चिहुंक कर दूर जा

हुए कतलूखां ने कहा 'पिता हीन-मैं पापी-ऊंह प्यास !'

आयेशा ने फिर कुछ पिलाया किन्तु फिर गला घुटने लगा। सांस छोड़ते २ बोला 'दारुण ज्वाला—साक्षी तुम देखना।—'

राजपुत्र ने कहा 'क्या ?'

कतलूखां ने सुन लिया और बोला।

इस क-इस कन्या-सी—पवित्र-स्पर्श-न-देखा नहीं। —तुम ऊह। बड़ी प्यास-प्यास-चले-आयेशा।'

फिर बोल न निकला। अपने जान परिश्रम तो बहुत किया परन्तु सिर झुक गया और कन्या का नाम लेते २ प्राण पयान कर गया।

अट्ठारहवां परिच्छेद।

बराबरी।

जगतसिंह छूट कर अपने पिता के लश्कर में गये और वहां से आकर सन्धि का निबन्ध करा दिया। पठान लोग दिल्लीश्वर के आधीन हुए तथापि उड़िस्सा उनके हाथ में रहा, सन्धि का नियम बिस्तार पूर्वक लिखने का इस स्थान पर कुछ प्रयोजन नहीं है। मेल होने के पीछे भी कुछ दिन तक दोनों दल के लोग अपने २ स्थान पर बने रहे। ईसाखां ने कतलूखां के पुत्रादि को लेकर उसमान के साथ मानसिंह को 'नज़र' दी। राजा ने भी उनका बड़ा आदर किया और 'खिलत' देकर बिदा किया इस प्रकार सन्धि करने और मिला भेटी करने में कुछ दिन बीत गये।

अन्त को जगतसिंह की सेना के पटने को कूच करने का दिन समीप आया। एक दिन संध्या को युवराज अपने नौकर

चाकरों को लेकर दुर्ग में उसमान आदि से विदा होने को चले। कारागार में भेंट होने के अनन्तर उसमान का युवराज पर वह भाव नहीं रहा जैसा पहिले था। अतएव सामान्य बात चीत करके उसने उनको विदा किया।

वहां से जगतसिंह ईसाखां के पास गये और सब से पीछे आयेशा से विदा होने गये। महल के द्वार पर एक पहरे वाले से कहला भेजा कि 'जिस दिन से नवाब साहब मरे हैं उस दिन से देखा नहीं, अब मैं पटने जाता हूँ न जाने फिर आना हो या न हो इसलिये मिलने आया हूं।'

थोड़ी देर के बाद खोजा ने आकर उत्तर दिया कि 'बीबी साहेबा कहती हैं कि मैं भेंट नहीं कर सक्ती मेरा अपराध क्षमा कीजिये।'

राजपुत्र बहुत उदास होकर फिरे। द्वार पर उसमान उनकी राह देख रहा था।

उनको देखकर राजपुत्र ने पूछा 'यदि मुझसे कोई काम होतो कहो।'

उसमान ने कहा 'आप के सङ्ग बहुत से चाकर हैं सबके सामने नहीं कह सक्ता, इन लोगों से कह दीजिये कि आगे चलें और आप मेरे सङ्ग आइये।'

राजपुत्र ने निःसंकोच सबको आगे बढ़ने का आदेश दिया और आप अकेले घोड़े पर चढ़कर उसमान के सङ्ग चले। उसमान भी घोड़े पर सवार था। थोड़े समय में दोनों एक शाल के जङ्गल में पहुंचे वन के बीच में एक टूटी झोपड़ी थी जिसके देखने से बोध होता था कि किसी ने अपने छिपने को बनाई हो। घोड़े को एक पेड़ में बांध दिया और दोनों भीतर गए। देखते क्या हैं कि एक ओर तो एक कबर खुदी पड़ी है और

एक ओर चिता सजी है। राजकुमार ने पूछा 'यह क्या व्यापार है!'

उसमान ने उत्तर दिया कि 'यह सब मेरी आज्ञा से बनाया गया है आज यदि मैं मारा जाऊं तो मुझको इस 'कबर' में गाड़ दीजियेगा और कदाचित आप मारे जांय तो किसी ब्राह्मण से आप को इसी चिता पर फुकवा दूंगा। कोई जानेगा भी न।'

राजपुत्र ने आश्चर्य से कहा मैं इसका अर्थ नहीं समझा' उसमान ने कहा 'हमलोग पठान हैं, जब हमारा अन्तः करण जलता है तो उचित अनुचित नहीं विचारते। इस पृथ्वी पर आयेशा के चाहने वाले दो नहीं रह सके, एक को यहीं प्राण देना पड़ेगा।

अब तो बातें खुल पड़ी। राजकुमार ने पूछा 'फिर तुम्हारी क्या इच्छा है?'

उसमान ने कहा 'आप के हाथ में शस्त्र है, मुझ से युद्ध करो यदि तुम्हारे में समर्थ हो मुझको मारकर आप अकंटक चैन करो नहीं मैं तो तुम्हारा प्राण लेने को खड़ाही हूं।'

और उत्तर की आशा न करके जगतसिंह के ऊपर आघात करने लगा। राजकुमार ने भी तुरन्त म्यानसे तलवार निकाल अपनेको बचाया। उसमान बारम्बार राजकुमार के प्राण लेने का उद्योग करता रहा पर राजकुमार ने एक भी हाथ नहीं चलाया केवल अपने शरीर की रक्षा करते रहे! दोनों शस्त्र विद्या में निपुण थे अतएव कोई पराजित नहीं हुआ। राजकुमार को बहुत चोट लगी और चारो ओर से रुधिर बहने लगा और कुछ सिथिलता भी आने लगी। अपनी यह दशा देख कातर स्वर से बोले 'उसमान ठहर जाओ मैंने हार मानी।'

उसमान हंसने लगा और बोला 'मैं यह नहीं जानता था कि राजपुत्र सेनापति मरने से डरता है, लड़ो, मैं तुमको मारूंगा छोड़ूंगा नहीं तुम जीते जी आयेशा को नहीं पा सकते।'

राजपुत्र ने कहा 'मैं आयेशा को नहीं चाहती।'

उसमान तरवार भांजते २ बोला 'तुम आयेशा को नहीं चाहते किन्तु आयेशा तुमको चाहती है। लड़ो, छूटोगे नहीं।'

राजकुमार ने असि दूर फेंक कर कहा 'मैं न लडूंगा। तुमने हमारा इतना उपकार किया है मैं तुमसे लड़ नहीं सक्ता।'

उसमान ने क्रोध करके राजकुमार के छाती में एक लात मारी और कहा 'जो सिपाही लड़ने से भागता है उसको ऐसे लड़ाते हैं।'

फिर राजकुमार से न रहा गया और चट भूमि पर से तरवार को उठा सिंह की भांति कूद कर उसके छाती पर चढ़ बैठे और उसके हाथ से तरवार छीन ली। दहिने हाथ से तरवार उसके गले पर रख बोले 'अब तो साधमिट गयी?'

उसमान ने कहा 'अभी तो दम में दम है।'

राजपुत्र ने कहा 'अब दम निकाल लेने में क्या बाधा है?'

उसमान ने कहा 'फिर निकाल लो नहीं तो मैं तुमको मारने को जीता रहूंगा।'

जगतसिंह ने कहा 'रहो कुछ भय नहीं।' मैं तो तुमको मार डालता किन्तु तुमने मेरी प्राण रक्षा की है मैंने भी छोड़ा।'

यह कह दोनों पैरों से उसका दोनों हाथ दबा लिया और एक २ करके उसका सब शस्त्र छीन लिया और फिर उसको छोड़कर बोले 'अब बराबर घर चले जाओ, तुमने मुसलमान होकर राजपुत्र की छाती में लात मारा था इसीलिये तुम्हारी यह दशा की गयी नहीं तो राजपूत कृतघ्न नहीं होते जो अपने